सोमयाजिश्रीरामचन्द्रविरचितम्

समरसारम्



रायपुर-निवासिराजमान्य-ज्योतिर्विरपण्डित-
हनूमच्छर्मविरचित-
संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष-'श्रीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
❀ बम्बई ❀



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज-श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

भूमिका।

भारतकी भूमि रत्नगर्भा कहीजाती है, वास्तवमें यह उपाधि सत्त्व-शून्य नहीं है। अवश्यही इसके सुविशाल गर्भमें अनन्त रत्नराशि संस्थापित हैं किन्तु रत्न कहानेसे हीरा-लाल-पन्ना आदि मूल्यवान् कंकर पत्थर ही केवल रत्न मान लियेजाँय सो बात यहां नहीं है। ऐसे पत्थर रत्न तो अन्यत्र भी उपलब्ध होसकते हैं परन्तु भारतभूमिके पवित्र गर्भमें 'नररत्न, नरत्न, नारीरत्न, विद्यारत्न, वस्तुरत्न और ग्रन्थ रत्नादि' अमूल्य और बहुमूल्य विविध रत्न वह भरेहुए हैं, जिनकी अन्यत्र उपलब्धि असाध्य ही नहीं, असम्भव भी है यहांके किसीएक रत्नको उठाकर अवलोकन कीजिये-एक एक रत्नमें अनेकानेक सद्गुण प्रतीत होते हैं।

यदि भारतीय रत्नराशिका प्रदर्शन करायाजाय तो उसके लिये बड़ेभारी आयोजनकी आवश्यकता है। इस क्षुद्रकाय भूमिकास्थलमें प्रदर्शिनी तो क्या, रत्नाम संग्रह करनेका भी सुप्रबन्ध नहीं हो-सकता है। और सब छोड़कर यदि अन्यान्य रत्नोंके अतिरिक्त यहां केवल ग्रन्थरत्नोंका ही प्रदर्शन कराना चाहें तो उसके लिये भी आज आवश्यक समय, सामग्री और स्थल नहीं है और न उनकी सूचीमात्र ही यहाँ देसकते हैं। इस कामके लिये मद्रचित " भारतमें रत्न " नामक पुस्तक आवश्यक है। किन्तु ग्रन्थरत्नोंमेंसे नमूनेका जो एक रत्न आज हमारे हाथमें है, केवल उसीका यहां कुछ परिचय देना उचित, आवश्यक और लाभदायक समझते हैं।

इस ग्रन्थरत्नका नाम "समरसार" है। इसको श्रीरामचन्द्र सोम-याजीने स्वरशास्त्रोंका सार लेकर ८९ पचासी श्लोकोंमें संग्रह किया है। इसमें छोटे छोटे और उपयोगी केवल दश प्रकरण वर्णन किये

गये हैं। कर्ण, कंठ, करांगुलीय भूषणोंमें जडने योग्य यह एक छोटासा किन्तु अमूल्य रत्न है। यद्यपि समरको लक्ष्यकर युद्धोपयोगी सारका इसमें संग्रह किया है। तथापि समरके सिवाय सांसारिक कार्योंमें भी यह संग्रह बहुत उपयोगी और आवश्यक है।

युद्धके निमित्त यात्रा करनेवाले दो नरेशोंमेंसे विजयश्री किसको मिलेगी? किससमय किस प्रकार गमन करनेसे कम सेनावाला राजा कैसे जीत सकेगा? असंख्य सेनासे घिराहुआ क्षुद्रकाय किला किस बलके आश्रयसे अटूट रहसकेगा? एक बलवान् मल्लसे मुठभेर होजाने पर निर्बल मल्ल किस युक्तिसे उसे चित्त करेगा? अभियोगमें फँसेहुए दो अभियुक्तोंमेंसे न्यायालयमें कौन बरी होगा? शास्त्रार्थ करतेहुए दो दिग्विजयी विद्वानोंमें किसका पक्ष मान्य रहेगा? किस साल संवत्, मास, दिनमें कौन वस्तु कितनी महँगी, सस्ती बिकसकेगी? कौनसा सेवक, स्वामीको सम्पत्ति सुख देनेवाला होगा? अथवा किस नौकरकी योजनासे मालिकको ऋणग्रस्त होना पडेगा? दिन रातमें मनुष्यका मन किस किस बातपर कब कब चलायमान होगा? किस समय कौन काम करनेसे क्या लाभालाभ मिलेगा? किस स्वरसंचालनकी रीतिसे दम्पतिप्रेम अगाढ होगा? और वर्ष दो वर्ष वा दश बीस वर्षतक जीवित रहने अथवा कबतक मरजानेकी चिंतासे निश्चिंत होनेका किस सरल उपायसे निश्चय होसकेगा? (कहांतक गिनावें) इत्यादि इत्यादि अनेकों बातोंका विचार समरसारमें भलेप्रकार वर्णन किया है। और सर्वतोभद्र जैसे कोई कोई प्रकरण तो इसमें ऐसे हैं जिनसे एकही प्रकरणसे अगणित बातोंका क्षयोद्भव शुभाशुभ सत्य विदित होता है।

विशेष महत्त्व और आरामकी बात इसमें यह अधिक है कि वर्ष जन्मपत्रादि देखने, गणितकरने और पतड़ा पोथी ढूंढनेकी इसमें विशेष

झंझट नहीं करनी पडती है जो कुछ अच्छा बुरा फल हो चटपट मालूम होजाताहै। और वह सच्चा मिलता है। कितने बड़े गौरवकी बात है कि एक छोटेसे ग्रन्थमें संसारका महोपकार करनेवाले बड़े बड़े काम भरे हुए हैं। यह सब कुछ होनेपर भी आजतक यह ग्रन्थ भाषाटीका सहित कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है।

इस ग्रन्थपर संस्कृतमें दो टीका प्राप्त हुई हैं। प्रथम भरतटीका है और दूसरी रामटीका है किन्तु इन दोनों उत्तम टीकाओंके होने परभी किसी किसी स्थलमें यह ग्रन्थ ऐसा अड़जाताहै कि विद्वानोंको भी इसके चलानेमें कुछ श्रम करना पड़ता है। अत एव विद्वान्से लेकर सर्वसाधारणपर्यन्त यह ग्रन्थ सबके उपयोगमें आसके ऐसा होनेके लिये श्रीमान् सेठ खेमराज श्रीकृष्णदासजीके आग्रह और चौमूं राजके आश्रित ज्योतिषरत्न पं० झूंथालालजीकी अनुमतिसे मैंने इसकी कई-एक हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ एकत्र करके संस्कृतटीका और भाषाटीका सहित इसे तैयार किया है।

यह ग्रन्थ सर्वसाधारणकी समझमें सरलतासे आसके और इसका असली आशय स्पष्टरूपसे विदित होसके इसलिये इसमें कईप्रकारके उदाहरण, उपदेश, चक्र, अन्वयांक और टिप्पणी आदि संयुक्तकरके इसको सर्वांगसुन्दर बनानेकी पूरी चेष्टाकी है।

भगवान् बम्बईके "श्रीवेंकटेश्वर" प्रेसके अध्यक्ष श्रीमान् सेठ खेमराजजीके भाग्यभास्करको उदित रक्खें। आपने भारतीय ग्रन्थरत्नोंके अस्तित्वकी रक्षाके निमित्त मुक्तहस्त धनव्यय करनेमेंपक्का प्रण कियाहै। समरसार जैसे अप्राप्य ग्रन्थरत्नोंका सम्प्राप्त होना आपहीके सद्विचारका फल है।

यदि विद्वान् लोग स्थिरतासे इसका आद्योपान्त अवलोकन और अनुशीलन करेंगे तो देश और ग्रन्थका बड़ा उद्धार होनेके साथही इसके तैयार करनेमें मुझे जो आयोजन और परिश्रम करनापड़ाहै वह सफल होसकता है। आशा है कि, विद्वान लोगइस ओर अवश्य ध्यान देंगे और इसमें भ्रम या दृष्टिदोषसे कहीं कुछ भूल हुई हो तो उसकी क्षमा करेंगे।

मैं इस ग्रन्थका सर्वाधिकार सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास अध्यक्ष "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस बम्बईको सादर समर्पित करता हूँ और कोई महाशय इसके छापने आदिका साहस न करें नहीं तो लाभके बदले हानि उठानी पड़ेगी।

शुभेच्छुक-हनूमान् शर्म्मा,
जयपुर-सिटी.



श्रीः ।

समरसारकी–विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	पृष्ठांक.
मङ्गलाचरण	१
श्रीमहादेवही स्वरशास्त्रको पूर्णतया जानते हैं	२
स्वर शास्त्रज्ञराजा अकेलाभी करोडों शत्रुओंका नाशकरता है	३
अनधिकारीको स्वरशास्त्र नहीं बताना	,,
अधिकारी शिष्यको स्वरशास्त्र बतानेके लाभ	४
जयपराजय चक्रोपक्रम –	,,
जयपराजयचक्र.	८
जयपराजयका दूसरा चक्र	१०–१२
कुल अकुल कुलाकुल गण	,,
कुलाकुलादि चक्र	१५
वर्णस्वर	,,
वर्णस्वर चक्र	२०
दूसरा	२१
अकारादि अक्षरोंके ग्रहराशि-स्वामी आदि और उदय	,,
ग्रहराशिनवांशादिकका स्वरचक्र	२३
द्वादशाब्दादि पञ्चस्वर	२४
द्वादशाब्दादिकस्वर चक्र	२८
मात्रा स्वरादि	२९
योगस्वर वर्णस्वरोंका विशेष फल	३१
युद्ध आदिमें योधाओंका जय पराजय साम्य ज्ञान	३३
जय पराजय चक्र	,,
बालकुमार इत्यादिस्वरके वशसे भूबल	३४
दिशास्वर चक्र	३५
राशिस्वर चक्र	३७
रविहतदिशा	,,
रविहतदिक्चक्र	३८
चन्द्रहत विदिशा और उनके स्वामी चन्द्रहतदिक्चक्र	३९
गूढाख्यकेतुहत दिग्विदिशा	४०
गूढचक्र	४१
सूर्य और चन्द्रमाके पूर्व दिशादिमें होनेसे जय और पराजय	,,
वायुबल–राहुबल	४३
राहुचक्र	४५
योगिनीबल	,,
योगिनीवास चक्र	४७
योगिनियोंके नाम	,,
राहुभुक्त योगिनियोंका बल	४७
रविआदिवारोंमें वर्जनीय कालार्ध यमार्ध	,,
अर्धयामकालचक्र	४९
सात वारोंमें अर्धयामका भोग	५०
ककुभदिक्चक्र	५१
युद्धमें छोडनेयोग्य होरा	,,
वारप्रवृत्तिजाननेकी रीति	५२
विरुद्धयाम गूढराहुरवि आदिमें युद्ध करनेपर प्रहारके स्थल	५३
ग्रहोंकी स्थितिसे प्रहारके स्थल	५४
युद्धमें अतिबलविरुद्धायाग्यतन	५७
चार दिग्बल	५८
सब ग्रहोंका अपने २ भोग किये-	

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक.
जाते नक्षत्रमें अश्विनीआदि २७ नक्षत्रोंका अवान्तर भोग	६०	मदनयुद्ध	८८
चंद्रसूर्याधिष्ठितनक्षत्रांतर्भागचक्र	६३	जूएकेलिये स्वरबल	"
राहुकालानलचक्र	६४	औषधादिको मुखमे रखकर युद्ध करनेमें युद्धमें जय	८९
अवकहड चक्र	६६	युद्धमे जयके लिये कोटचक्र	९३
हंसचारोक्तिपूर्वक स्वरबलज्ञान	७०	कोटचक्रके चिह्न	९७-९८
पृथ्व्यादि तत्त्ववहन फल	७६	क्रूर सौम्यग्रहोंकी स्थितिसे दुर्गभंग और रक्षादि	९९
हृत्कमलपत्रमे रविचन्द्रवहनपूर्वक प्राणवायुके संचारमे अर्धघट्यादिज्ञान	७७	कोटचक्रके स्वरूप	१००
चन्द्रस्वर ज्ञान चक्र	७८	सर्वतोभद्र चक्र	११०
रविआदिनाडीके स्वरमें युद्धके आरंभहोनेमे जय	८२	वक्रशीघ्रग्रह वेध	११४
रवि आदिनाडीके स्वरमे प्रश्नविशेष	"	ऋणधनशोधन	११९
सूर्यचन्द्रनाडीके चलनेमें कर्तव्य	८५	ऋणधनसाधनचक्र	१२०
रविनाडीवहनमें स्त्रियोंका द्रावण	"	आतुर साध्यासाध्यज्ञानचक्र	१२२
वशीकरण	८७	छायापुरुषदेखनेका प्रकार	१२३
		दूसरे शकुन	१२५
		ग्रन्थकी समाप्ति	१२७

इत्यनुक्रमणिका ।



श्रीः ।

अथ समरसारम्

संस्कृतटीका-भाषाटीकासमेतम् ।

नत्वा गुरून्समालोक्य स्वरशास्त्राणि भूरिशः ।
वक्ष्ये युद्धजयोपायं धार्मिकाणां महीक्षिताम् ॥१॥

नत्वा भक्त्या महेशानं सर्वसिद्धिविधायकम् ।
व्याख्या समरसारस्य संग्रहाख्या प्रकाश्यते ॥ १ ॥
टीका समरसारस्य रामेण भरतेन च ॥
याऽकारि तत्संग्रहोऽत्र यथायोगं विविच्यते ॥ २ ॥

(संस्कृतटीका) अहं रामो वाजपेयी धार्मिकाणां धर्मात्मनां महीक्षितां भूपानां युद्धजयोपायं वक्ष्ये कथयिष्ये । किं कृत्वा गुरून्नत्वा नमस्कृत्य । पुनः किं कृत्वा भूरिशः बहुशः बहूनि स्वरशास्त्राणि समालोक्य सम्यग्विचार्य,युद्धे जयः युद्धजयः युद्धजयस्योपायः युद्धजयोपायः तं युद्धजयोपायम्, स्वरशास्त्राणि स्वरग्रन्थान् पूर्वाचार्यकृतान् । गृणन्ति हितमुपदिशन्तिते गुरवस्तान्गुरून् ॥ १ ॥

(भाषाटीका) गुरुओंको नमस्कार करके बहुतसे स्वरशास्त्रोंको भले प्रकार देखकर धार्मिक राजाओंके युद्धमें जय होनेका उपाय कहता हूं ॥ १ ॥

बहुधा विदधे सदाशिवोऽत्र स्वरशास्त्राणि तदेकवाक्यतां तु । भगवानयमेव वेद सम्यग्गुरुमार्गानुगतोऽपरस्तु लोकः ॥ २ ॥

सदाशिवः महादेवः अत्र युद्धजयोपायनिमित्तं बहुप्रकारं बहूनि च स्वरशास्त्राणि स्वरग्रन्थान् विदधे चकार कृतवान् । अयमेव भगवान् सदाशिवः तदेकवाक्यतां तेषां ग्रन्थानां स्वरशास्त्राणाम् एकवाक्यताम् ऐकमत्यं वेद जानाति । अपरोस्मदादिर्लोकः अल्पबुद्धिः गुरुमार्गानुगतः गुरूपदिष्टं मार्गम् अनुगतो भवति गुरूपदिष्टमार्गानुसारी भवति गुरूपदिष्टमेव जानाति न त्वन्यत् ॥ २ ॥

यहाँ सदाशिवने बहुत स्वरशास्त्रोंका विधान किया है और वही शिवभगवान् उनकी एकवाक्यताको भी भलेप्रकार जानते हैं। बाकी हमलोग तो गुरुमार्गानुगत हैं अर्थात् गुरुसे शिष्य और शिष्यसे प्रशिष्य जानते हैं ॥ २ ॥

वक्ष्याम्यहं यदिह किंचन सर्वसारमेतावदेव परिचिन्त्य नृपः प्रवृत्तः । एकोपि कोटिभटलोलपतङ्गदीपलीलां मुदानुभवतु स्फुटकौतुकेन ॥ ३ ॥

अहम् आचार्यः इह अस्मिन् ग्रन्थे यत्किञ्चन सर्वसारं सर्वेषां ग्रन्थानां सारं सारभूतं वक्ष्यामि कथयिष्यामि एतावदेव सम्यक् परिचिन्त्य विचार्य योद्धुं प्रवृत्तः चलितः एकोपि नृपःकोटिभटलोलपतंगदीपलीलां मुदा आनन्देन स्फुटकौतुकेन प्रत्यक्षकौतुकेन अनुभवतु अनुभवं करोतु । कोटिभटा-

स्त एव लोलाः चंचलाः पतंगा दीपे पतनशीलास्तेषां लीलाम् अनुभवतु। कोर्थः यथा पतंगा ज्वलद्दीपोपरि दूरतः समागत्य निपतन्ति तथा अभिमायम् एकं राजानम् उपरि बहवःशूराः शत्रवः सन्निपत्य पतंगवद्भस्मीभवन्तीत्यर्थः ॥ ३ ॥

हम यहाँ जो कुछ सर्वसार कहते हैं केवल उसीको चिन्तन करके राजा युद्धमें प्रवृत्त हो तो जैसे दीपकके ऊपर अगणित पतंग अपने आप पड़कर भस्म होजाते हैं और दीपक तमाशा देखता रहता है वैसेही, वह अकेला राजा भी करोडों चंचल योद्धाओंके बीच खड़ा रहकर उस दीपककी लीलाके आनन्दका अनुभव करसकता है अर्थात् उसपर करोडों योद्धा टूटपड़ें तौभी वही जीत सकता है ॥ ३ ॥

नेदं देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यक्फलाय। अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवी कोपा-न्निर्दहेन्नो चिराय ॥ ४ ॥

एतत्स्वरज्ञानं दुर्विनीताय दुष्टाय शिष्याय जातु कदा-चिन्न देयम्। तत्तु ज्ञानं गुप्तं कृतं सत् सम्यक् फलाय भवेत् सम्यक्फलतीत्यर्थः। अस्थाने दुष्टे शिष्ये स्थाप्यमाना दीय-माना वाचां देवी सरस्वती कोपात् क्रोधात् निर्दहेद्दुष्टं शिष्यं भस्मीकुर्य्यान्नो चिराय नो विलम्बेन शीघ्रमेव तं भस्मी-कुर्य्यात् ॥ ४ ॥

इस स्वरज्ञानको दुष्टशिष्यको कदापि न देना चाहिये। और इसको अच्छे फलके वास्ते गुप्त रखना चाहिये। यदि अपात्रको देदिया जाय तो वह सरस्वती देवीके कोपसे विना विलम्ब भस्म होजाता है ॥ ४ ॥

विनयावनताय दीयमाना प्रभवेत्कल्पलतेव सत्फलाय। उपकृत्यनुचिन्त्यकानि शास्त्राण्युपकारस्य पदं हि साधुरेव ॥ ५ ॥

विद्याविनीताय नताय विनयनम्राय शिष्याय दीयमाना कल्पलतेव कल्पवृक्षलतेव सत्फलाय उत्तमफलाय भवेत् समर्था स्यात्। कुतः यतः शास्त्राणि उपकृत्यनुचिन्त्यकानि भवन्ति उपकृत्यानुचिन्त्ययन्ति तानि उपकृत्यनुचिन्त्यकानि। उपकारस्य पदं स्थानं साधुरेव भवेन्नान्यः। तस्मात् साधोरेव उपकारः कर्तव्यः न दुष्टस्य। दुष्टस्योपकाराद्वैपरीत्यं भवति ॥ ५ ॥

विनयसे झुके हुए शिष्यको देनेसे अच्छे फलके वास्ते कल्पलताकी तरह बढता है। क्योंकि चिन्तन करने योग्य शास्त्रोंका उपकार करनाही उचित है। और उपकारके योग्य साधु ही होते है ॥ ५ ॥

जयपराजयचक्रमाह १.

शं ५ मे ५ गं ३ गा ३ग ३ ति ६ स्ते ६द८ह८द८धि ९ तदर्धैः सर्गपण्ढान्विनाचैःकार्याह्वयालीष्वृते ङञमपि सुभटयोर्नामवर्णोत्थसंख्ये। खा २ स्तेशेपेप्यशेपे विजयपरिभवौ दा ८ त्रिशेपे न० व४ स्ते ६मा५मा ७ ली ३ का १ रि २जेता क्रमत इह मतोऽन्योऽन्यं इत्युक्तमाद्यैः ॥ ६ ॥

" कादयोंका ९ टादयोंकाः ९ पादयः पंच ५ कीर्तिताः । यादयोऽष्टौ ८ तथा प्राज्ञैर्गणकैर्बुद्धिमत्तरैः"

कादयः अंका नवसंख्यका ज्ञेयाः तथा च क१-ख२-ग३ घ४-ङ५-च६-छ७-ज ८ झ ९ । टादयो नव ज्ञेयाः । ट१-ठ२-ड३-ढ४-ण५-त६-थ७-द८-ध ९ । तथा पादयः पंच ज्ञेयाः प१-फ२-ब३-भ४-म५- । तथा यादयोऽष्टौ ज्ञेयाः य१-र२-ल३-व४-श५-ष६-स७-ह ८ एवं अक्षरैः अंकाः बुद्धिमद्भिः अस्मिन्ग्रन्थे ज्ञेयाः सर्वत्र । अन्यत्रापि " कटपयवर्गैर्नवनवपञ्चाष्ट, न-ञ-ज्ञाः शून्यबोधकाः इति । " अन्यत्रापि-" कादिर्नवाङ्का नवटादिरङ्काः पादिश्शरा यादि भवन्ति चाष्टौ।"-ने ञे शून्ये स्वराश्च शून्याः । इति ।

शम्मेगंगा इत्यादीनाम् अंकानाम् अधः-सर्गो विसर्गः अः । 'चत्वारश्च नपुंसकाः' इति वचनात् षण्ढा ऋ ॠ ऌ ॡ एतान्विना त्यक्त्वा, अन्यान् (स्वरान् अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं) एतान् तदधस्तेषाम् अंकानामधः एकादशेसु कोष्ठेषु तिर्यक् लिखेत । पुनरुयालीषु तिसृषु पंक्तिषु तदधः कायान् ककारः आयः येषां ते कायाः वर्णाः ङकार-ञकारवर्जिताः हकारान्ताश्च ताँल्लिखेत् । सुभटयोः शोभन-भटयोः शोभनशूरयोः नाम्नि ये वर्णाः स्वराश्च भवन्ति तेषाम् अंकाः एकीकर्तव्या । एवं द्वयोः अंकान् पृथक् पृथक् एकी-

शस्य स्वेन द्वाभ्यां भजेत्। यस्मिन्नेकशेषो भवति तस्य विजयः। यत्र शून्यं तत्र पराजयः।

पुनस्त एवांकाः पृथक् पृथक् स्थाप्याः दभक्ता अष्टभक्ताः भक्ते सति शेषांकाः यदि ऐते भवन्ति। एते के— ' न० व ४ स्ते ६ मा ५ सा ७ ली ३ का १ रि २ ' एषाम् अंकानां मध्ये यस्य योधस्य अंकः अग्र्यः अग्रिमः भवति तस्याग्रे च जेता यस्याग्रे यः स जेता। एवमग्रेपि ज्ञेयम्। इति आद्यैः पण्डितैः उक्तम् ॥ ६ ॥

बारह आडी और सात ऊभी रेखा खींचकर प्रथम पंक्तिके ग्यारह कोठोंमें ' शं ५ मे ५ - ३ गा ३ ग ३ ति ६ स्ते ६ द ८ ह ८ द ८ धि ९, यह लिखे। और इन अंकोंके नीचे सर्व (विसर्ग) और षण्ढ (ऋॠऌॡ) बिना अच् (अआइईउऊएऐओऔअं) स्थापन करै और उनके नीचेकी पंक्तियोंमें ' ङ ञ ' बिना क ख ग आदिको लिखै तो " जयपराजयचक्र " बनजाता है। यह चक्र नीचे स्पष्ट लिखा है। इस चक्रने योद्धाओंके नामके अक्षरोंसे उठी हुई संख्यामें दोका भाग देनेसे यदि शेप रहै तो विजय और अशेप (०) रहे तो पराजय होता है।

यदि उसी संख्यामें आठका भाग दे और ' न० व ४ स्तै ६ मा ५ सा ७ ली ३ का १ रि २ ' इनमेंसे कोई अंक बचे तो जिससे जिसका आगे हो उसीका विजय होता है, ऐसा पूर्वाचार्योंने कहा है।

उदाहरण।

ग्रंथका आशय अच्छीतरह समझमें आनेके लिये उदाहरण देना होता है। किन्तु उदाहरणके पहले ग्रन्थकारके पारिभाषिक-

संख्यांक आदि विदित करना अत्यावश्यक है। क्योंकि मार्गभेद जान-लेनेसे गतिमें भ्रम या रुकावट नहीं होता है।

प्रायः ज्योतिषग्रन्थोंके गणितमें एक-दो-तीन-आदि संख्यावाची अंकोंमें एकद्वित्र्यादि अथवा भूभुजभुवनादि शब्द व्यवहृत किये जाते हैं। किन्तु समरसारकारने गोप्य और लाघवके लिये कटपयक्रम रचकर [क १-ख २-ग ३-घ ४-ङ ५-च ६-छ ७-ज ८-झ ९। ट १-ठ २-ड ३-ढ ४-ण ५-त ६-थ ७-द ८-ध ९। प १-फ २-ब ३-भ ४-म ५-। य १-र २-ल ३-व ४-श ५-ष ६-स ७-ह ८] इन अंकोंसे एक दो तीन चार आदि संख्याके अंक लिये हैं। और जहाँ ९ से ऊपर 'दश, बारह, बीश या सौ दोसौ, हजार आदि' अधिक संख्या लिखनेका प्रयोजन पड़ा है वहांभी 'अंकानां वामतो गतिः' मानकर इन्हीं अंकोंसे संख्यात्मक अंक लिये हैं। यथा-न० ट १ से १०-र २ थ ७ से ७२-घ ४ र २ ठ २ से २२४-और लं ३ बो ४ द ८ र २ से २८४३ इत्यादि। इनके अतिरिक्त संख्यावाची और अक्षर यथास्थान पर चक्रोंमें दिये गये हैं। स्मरण रखनेकी बात है कि, चक्रोंसे अंक लेते समय प्रकरणके अनुसार वर्ण और मात्रा दोनोंके संख्यावाची अंक लिये जाते हैं। वस अब इसका उदाहरण देते हैं।"

ऊपर जो लिखागया है कि, योद्धाओंके नामके अक्षरोंसे उठी हुई संख्यामें २ का भाग दे तो यहाँ इसके अनुसार राम और रावण इनका जय पराजय देखनेके लिये "राम" नाममें रेफ, आकार मकार, अकार यह चार अंक हैं। चक्रमें इन अंकोंके ऊपर गं ३-मे ५-शं५ शं ५ यह अंक हैं। अतः इन सबको जोडनेसे अठारह होते हैं। ऐसेही रावण" नाममें-रेफ, आकाा, वकार, अकार, णकार, अकार यह छः अंक हैं। और चक्रमें इन अंकोंके ऊपर 'गं ३-मे ५-गं ३-शं ५-में ५-शं ५' यह अंक हैं अतः इन सबको जोडनेसे

छब्बीस होते हैं। इन १८ और २६ में पृथक् पृथक् ख अर्थात् दोका भाग देनेसे दोनोंमेंही शेष नहीं बचता है। अतएव राम और रावणकी साम्यता आती है। (कदाचित् इस उदाहरणसे कोई यह सन्देह करें कि रामरावणमें तो रामका विजय हुआथा। यहां साम्यता क्यों हुई। इसलिये सूचित करना पडता है कि यह साम्यता अनुचित न होनेपर भी आगे चक्रांतरसे रामकाही जय आता है।

जयपराजय चक्रम् १.										
शं ५	मे ५	गं ३	गा ३	ग ३	ति ६	स्ते ६	द ८	ह ८	द ८	धि ९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०
ग्र ०	ष ४	स्ते ६	मा ५	सा ७	ळि ३	रि २	का १	०	०	०

दाते शेषे० इसके अनुसार दोनोंका जयपराजय जाननेके लिये पहलेकी भांति राम रावणकी नामाक्षर संख्या १८। २६ में आठका भाग दिया तो २। २ शेष रहनेसे यहांभी साम्यताही है ॥ ६ ॥

पुनः जयपराजयचक्रमाह ।

अङ्कांस्तुलारिभजतीधभुगानकोः स्यूं रूपे १२ रें तोऽक्षरमिती रहिते विचार्य। तस्मात्पुनर्दे ८ ह्रति-

शेषबहुत्वतः स्याज्जेता स एव बलपः सुधिया विधेयः ॥ ७ ॥

'तु ६ ला ३ रि २ भ ४ ज ८ ती ६ ध ९ मु ४ गा३ न० का १ ' एते अंका एकादशसु कोष्ठेषु तिर्यक् लेख्याः । पुनस्तदधः अकढम -आखणय -इगतर -ईघथल -उचदव-ऊछधश एजनप -ऐझपस -ओटफह -औठब -अंडभ इति क्रमेण वर्णा लेख्याः । पुनः द्वयोः अक्षराणां च स्वराणां च अंकान् तुलारिभजतीत्यादिकान् विचार्य स्थानद्वये भिन्नं भिन्नं लेख्यम् । पुनः रूपैः द्वादशभिः पृथक् पृथक् रहितं वर्जितं विधाय कृत्वा । द ८ इतिशेषबहुत्वतः देन अष्टभिर्हरेत् हृते सति यस्यांकबाहुल्यम् अवशिष्टं भवति तस्य जयो भवति । यस्य स्वल्पांको भवति तस्य पराजयो भवति । सुधिया सुबुद्धिना राज्ञा युद्धादौ स एव बलपः सेनापतिर्विधेय इति॥ ७ ॥

तु ६-ला ३-रि २-भ ४-ज ८-ती ६-ध ९-मु ४-गा ३-न०-का १- इन अंकोंको पहलेकी भांति ग्यारह कोठोंमें लिखकर उनके नीचे पूर्वोक्त अचू आदि लिखै तो " जयपराजय " चक्र बनजाता है । इन अंकोंसे दोनों योद्धाओंके नामाक्षरोंकी पृथक् पृथक् संख्या आवे उसमें बारह घटावे और शेषमें आठका भाग दे तो जिसका शेष बहुत हो उसीका जय होता है । अतएव सुन्दर बुद्धिवाला राजा इसप्रकार विचार कर सेनापति नियत करे ॥ ७ ।

उदाहरण ।

जिस प्रकार पहले (शं ५-मे ५-मं २-गा-३) से अंक लिये थे उसी प्रकार यहाँ भी तुलारिभजतीसे राम-रावण-के अंक लिये तो

र २- आ३-म६-, रामके १७ और र२- आ३- व८- अ६-ण ३- अ ६-, रावणके २८ आये । इनमें पृथक्क पृथक्क बारह घटाये तो रामके ५--रावणके १६ बचे । फिर इन ५ । १६ में आठका भाग दिया तो रामके ५ और रावणके० रहे. अतएव यहाँ श्रीरामचन्द्रकाहो जय प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

पुनः जयपराजय चक्रम् ।

तु ६	ला ३	रि २	भ ४	ज ८	ती ६	ध ९	भु ४	गा ३	न ०	का १
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड
ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ
म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह	०	०

अथापरं जयपराजयचक्रमाह् ।

वर्गाष्टकांकौ[2] दशतिघासकालारि[1] तद्युतौ[4] । नाम्नोः[3]
सभाजितायां[5] स्यांद्विजयो[5]ऽधिकशेषके[6] ॥ ८ ॥

' अकचटतपयशाः ' अष्टौ वर्गा अष्टसु कोष्ठेषु क्रमेण लेख्याः कथं तदाह—प्रथमकोष्ठे अकाराद्याः षोडशस्वरा । द्वितीयकोष्ठे कवर्गः (क ख ग घ ङ) तृतीय-

कोष्ठे चवर्गः (च छ ज झ ञ) चतुर्थकोष्ठे टवर्गः (ट ठ ड ढ ण) पंचमकोष्ठे तवर्गः (त थ द ध न) षष्ठे पवर्गः (प फ ब भ म) सप्तमे यवर्ग(य र ल व) अष्टमे शवर्गः(श ष स ह)एवम् अष्टानां वर्गाणां वर्णान् अधो लिखित्वा अष्टसुकोष्ठेषु, पुनस्तेषां कोष्ठानामुपरि ' द८श५ति६घा४सका१ला३रि२ ' एते अंकाः क्रमेण लेख्याः । पुनः द्वयोर्योधयोर्नाम्नोः वर्णानां स्वराणां च अंकायुतिं पृथक् पृथक् विधाय कृत्वा सेन सप्तभिर्हरेत् । यस्य नाम्नि अधिकांकशेषस्तिष्ठति तस्य विजयः यस्य न्यूनांकस्तस्य पराजय इति ॥ ८ ॥

' द-श-ति-घा-स-का-ला-रि ' इन अंकोंके नीचे अवर्गादि क्रमसे आठ वर्ग लिखें तो " जयपराजयचक्र " बनजाता है. इसमें भी पूर्ववत् दोनोंके नामाक्षरोंसे अंक लाकर पृथक् पृथक् सातका भाग दे तो जिसका शेष अधिक रहै उसीका जय होता है ॥ ८ ॥+

+ उपरोक्त श्लोकमें-'अंकाद्गुलारि-वर्गाष्टकांका-' जिसे दो योद्धाओंके जय पराजय विदित होनेका उल्लेख कियागया है किन्तु दो दो संबन्धी यायी, स्थायी, वादी प्रतिवादी और मल्लादिकोंमेंभी इसकी योजना होसकतीहै । किसी बातपर दो शास्त्री अड़ रहेहैं इनमें किसका पक्ष रहैगा, पुत्र घरेलू झगड़ा लेकर दो मनुष्य वादी प्रतिवादी हुए हैं इनमें कौन जीतेगा, किसी लोभवश दो मनुष्योंने प्रण (शर्त) बदी है. इनमें किसको लाभ होगा ? इत्यादि २ बातोंका इनसे समुचित निश्चय होसकता है । प्रतीतिके लिये तीन उदाहरण देते हैं । यथा-धर्मप्रदीपको निस्तब्ध या प्रदीप्त करनेके लिये माधव और यादव शास्त्रीमें शास्त्रार्थ चलरहाहै इनमें किसका पक्ष सत्यरहैगा ? यह जाननेके लिये

उदाहरण ।

यथा ' राम–रावण ' के नामाक्षरोंकी संख्या लानेमें रामका रेफ सप्तमवर्गीय है और इसका अंक ला से ३ है । आकार प्रथमवर्गीय है इसका अंक दकारसे ८ है । मकार पष्ठवर्गीय है इसका अंक ककारसे १ है । अकारका पूर्ववत् ८ है । इसभाँति रामनाम संख्या २० है और रावणमें इसी प्रकार ' र ३–आ ८–व ३–अ ८–ण ४–अ८–' नाम संख्या ३४ इन दोनों २० । ३४ में सातका भाग दिया तो शेप ६ । ६ बचनेसे परस्परमें साम्यता आती है ॥ ८ ॥

—'शंमेगंगा' के अनुसार म-आ ध-अ-व-अ' माधवकी संख्या २९ और 'य आ
५ ५ ६ ९ ३ ९ ८ ९
द-अ न-अ' यादवकी संख्या २६ इन २९।२६ में २ का भागदियातो माधवका १
३ ९ १ ९
और यादवका०इस शेषमें माधवका अधिक शेष रहनेसे इसीका पक्ष सत्य रहेगा। दुकानके आय व्यय विषयपर गोपी और हरी मुकद्दमा कररहे हैं इनमें कौन जीतेगा ? यह जाननेके लिये ' तुलारिभजती ' के अनुसार ' ग-ओ-प-ई-
२ ३ ४ ४
गोपीकी संख्या १३ ' ह-अ-र-ई ' हरीकी संख्या १५–इन १३ । १५ में
३ ६ २ ४
पृथक् २ बारह घटाये तो १ । ३ रहे इनमें आठका भाग दिया तो १ । ३ शेष रहनेसे हरीका शेष अधिक है अतएव हरी मुकद्दमा जीतेगा । वेगसे बहती हुई गंगामें इस तीरसे उस तीरपर शीघ्र तैरकर जानेके लिये कछिया और बछिया में सौ सौ रुपयोंकी शर्त बदी है । इनमें किसको लाभ होगा ? यह जाननेके लिये ' घर्माष्टकांका ' के अनुसार ' क-अ छ-इ-य-आ' कछियाकी संख्या ३८ और ब-अ छ-इ य-आ ' बछियाकी संख्या ३४
५ ८ १ ८ ३ ८ १ ८ ६ ८ ३ ८
इन ३८ । ३४ में ७ का भाग दिया तो ३।६ शेष रहनेसे बछिया शीघ्र तैरकर १००) पारितोषिक पावेगा । इन उदाहरणोंमें पृथक् २ चक्रोंसे जो अंक लिये हैं सो केवल दिखानेके लिये लिये हैं । पृथक् २ लेनेका कोई नियम नहीं है । किसीभी एक चक्रसे सब बातें देखी जासक्ती हैं ।

इति समरसारे जयपराजयचिन्ताप्रकरणम् ।

अपर जयपराजयचक्रम् ।							
द ८	श ५	ति ६	या ४	स ७	का १	ल ३	रि २
अ आ इ ई	क	च	ट	त	प	य	श
उ ऊ ऋ ॠ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	ष
ऌ ॡ ए ऐ	ग	ज	ड	द	ब	ल	स
ओ औ अं	घ	झ	ढ	ध	भ	व	ह
अः	ङ	ञ	ण	न	म	०	०

कुला-कुल–कुलाकुलगणमाह ।

मूलार्द्राभिजिदम्बुपोडु दशमी षष्ठी द्वितीया बुधो
राज्ञोः सन्धिकरः कुलाकुलगणः स्थास्नोर्जयार्थे
कुलः । मासाख्यास्थितभानि शेषतिथयो युग्माः
कुजो भार्गवः संघो[11] न्यो[10] ऽकुलसंज्ञको[12] विजयते[13]
तस्मिन्प्रयातो ध्रुवम्[14] ॥ ९ ॥

मूलम्, आर्द्रा, अभिजित्, अंबुपः, शतभिषा एतानि उडूनि नक्षत्राणि, षष्ठी, द्वितीया, दशमी एताः तिथयः, बुधवासरश्च कुलाकुलगणः, अयं योद्धुमिच्छतोर्द्वयोः राज्ञो-

भूपयोः सन्धिकर- प्रीतिकरः स्यात् । मासाख्यास्थितभानि चैत्रादिमासानाम् आख्या नामानि तैर्नामभिःस्थितानि भानि तानि कानि ? चित्रा,विशाखा,ज्येष्ठा, पूर्वापाढा,श्रवणः, पूर्वभाद्रपदा, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरः, पुष्यः, मघा, पूर्वा फाल्गुनी एवा मासाख्यास्थितभानि,-शेषतिथयो युग्माः चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, कुजः भौमवारः भार्गवः शुक्रवारः कुलगणः, अयं स्थास्नोःस्थायिनः जयार्थं जयार्थी भवति । अन्यःशेषतिथिवारनक्षत्रसमूहःअकुलगणः । स कः ? प्रतिपत्, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, नवमी, एकादशी,पूर्णिमा, अमावस्या एताः तिथयः । रवि-चन्द्र-गुरु-शनयो वाराः । भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, उ. पा, उ. भा, उ. फा, अयं तिथिवारनक्षत्रसमूहः अकुलगणः । अस्मिन् गणे प्रयातो यायी विजयते विजयं प्राप्नोति ॥ ९ ॥

मूल, आर्द्रा, अभिजित्, शतभिषा, यह नक्षत्र-दशमी, षष्ठी, द्वितीया, यह तिथि और बुधवार-इनकी "कुलाकुल" संज्ञा है । इनमें युद्धकी इच्छा करनेवाले राजाओंके परस्परमें सन्धि होजाती है । और महीनोंके नामवाले-चित्रा, विशाखा, जेष्ठा, पूर्वाषाढ, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिर, पुष्य, मघा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र,-तथा शेषयुग्म-चतुर्थी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, तिथि-और मंगल, शुक्र वार इनकी "कुल" संज्ञा है । इसमें स्थाई (जिसपर दूसरेने चढाई की है और वह अपने राज्यमें बैठा है उस) राजाका जय होता है, और अन्यसंघ-भरणी, रोहिणी,पुनर्वसु,

आश्लेषा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी-प्रतिपदा, तृतीया, पंचमी सप्तमी, नवमी, एकादशी, पूर्णिमा और अमावास्या-सूर्य, चन्द्र, गुरु, शनि इनकी " अकुल " संज्ञा है । इसमें युद्धारम्भ हो तो यायी राजाका निश्चय विजय होता है ॥ ९ ॥

कुला-ऽकुल-कुलाकुलगणचक्रम् ।

मृ. आ. ऽभि. श-२ । १० । ६ ।-बुध.	कुलाकुलगणः	सन्धिः
चि वि. ज्ये पूषा. श्र. पू. भा. अश्वि. कृ. मृ. पुष्य. म पूफा.-४ । ८ । १२ । १४ मं. शु	कुलगणः	स्थायि-जयः
भ.रो.पु.ऽश्ले उफा ह स्वा.ऽनु.उषा.धं उभा रे. १।३।५।ऽ।९।११।१३। १५। ३० । सू. चं. बृ श.	अकुलगणः	यायि-जयः

सकलस्वरशिरोमणिं वर्णस्वरमाह ।

पंचार्णेङ्स्वराः कछडधभवमुखेष्वङ्गणञ्यञ्जनेषु स्युर्नन्दादेस्तिथेस्ते तिथिकपिलवतोऽप्यन्तराभोगभाजः । नाम्नो बालःकुमारो युवसजरमृतास्त्वादि वर्णात्स्वरास्ते सिद्धयुत्कर्षो युवान्तोऽपचर्यहतयोर्युद्धचर्ता द्विण्मृताचिं ॥ १० ॥

पञ्चार्णेङ्स्वराः अण्-एङ्-प्रत्याहारान्तर्भूताः ये स्वरा अ इ उ-अण्प्रत्याहारः ए ओ इति एङ्प्रत्याहारः एवम्

सर्वसिद्धिं युवा दत्ते यात्रायुद्धे विशेषतः ॥ ३ ॥ दाने देवार्चने दीक्षागूढमंत्रप्रकल्पने । वृद्धस्वरो भवेद्भव्यो रणे भङ्गो भयं गमे ॥ ॥ ४ ॥ विवाहादि शुभं सर्वं संग्रामाद्यशुभं तथा । न कर्तव्यं नृभिः किञ्चिज्जाते मृत्युः स्वरोदये ॥ ५ ॥ मृतो वृद्धस्तथा बालः कुमारस्तरुणः स्वरः । यथोत्तरबलाः सर्वे ज्ञातव्याः स्वरवेदिभिः ॥ ६ ॥" इति । यत्र नन्दादितिथीनां कपिलवो यल्लिखितस्तत्षष्टिघटिकात्मकतिथिभोगेन न्यूनाधिके तु त्रैराशिकमूह्यमिति ॥ १० ॥

अ–इ–उ–ए–ओ–' यह पांचोंस्वर ङ-ण-ञ-बिनाक-छ ड-ध-भ-व प्रमुख वर्णोंके स्वर हैं । अर्थात् ' कछडधभव 'इन अक्षरोंका अ-स्वरहै ।

---

(१) अ इ उ ए ओ–यह पांचो स्वर सर्वत्र व्याप्त हैं । अतएव केवल इन्हीं पाचोंके सम्यग् ज्ञानसे मनुष्य सर्व शुभाशुभ कथनमें समर्थ होसक्ता है । अपना प्रयोजन साधनेवालोंको उचित है कि जो कार्य देव, तत्त्व, शक्ति और गंध आदि जिस किसी सम्बन्धी हो उसको उसी देव, शक्ति, गन्धादिके उदयस्वरोंमें करे तो कार्यकी सिद्धि होसक्ती है । यथा–ब्रह्मासम्बन्धी प्रयोगादि ' अ ' में, विष्णुसम्बन्धी ' इ ' मे, रुद्र-सम्बन्धी ' उ ' में सूर्यसम्बन्धी ' ए ' में और चन्द्रसम्बन्धी ' ओ ' में करनेसे सिद्धि होती है । ऐसेही ' अ ' में इच्छा, ' इ ' में ज्ञान, ' उ ' में प्रभा, ' ए ' में श्रद्धा, और ' ओ ' में मेधा यह शक्ति फलीभूत होती है । ' अ ' में चौकोर, ' इ ' में अर्द्ध, ' उ ' में त्रिकोण, ' ए ' में षट्कोण, और ' में वर्तुलाकार चक्रमें पूजादिक उचित है । ' अ ' के उदयमें पृथ्वीगत, ' ई ' के उदयमें जलगत, ' उ ' के उदयमें अग्निगत, ' ए ' के उदयमें वायुगत और ' ओ ' के उदयमें आकाश (ऊर्ध्व) गत प्रश्न होते हैं । और ' अ ' गन्ध, ' इ ' रस, ' उ ' रूप, ' ए ' स्पर्श, और ' ओ ' में शब्दविषयक प्रश्न कहे जाते हैं । प्रकार अकारादि स्वरोंके उदयमें तत्तत्सम्बन्धी प्रश्नोंका शुभाशुभ कहना चाहिये ।

वर्णस्वरचक्रम् ।

स्व / व	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
क	अ	इ	उ	ए	ओ
ख	इ	उ	ए	ओ	अ
ग	उ	ए	ओ	अ	इ
घ	ए	ओ	अ	इ	उ
च	ओ	अ	इ	उ	ए
छ	अ	इ	उ	ए	ओ
ज	इ	उ	ए	ओ	अ
झ	उ	ए	ओ	अ	इ
ट	ए	ओ	अ	इ	उ
ठ	ओ	अ	इ	उ	ए
ड	अ	इ	उ	ए	ओ
ढ	इ	उ	ए	ओ	अ
त	उ	ए	ओ	अ	इ
थ	ए	ओ	अ	इ	उ
द	ओ	अ	इ	उ	ए

इस चक्रसे सब वर्णोंके बाल, कुमार, युवा, वृद्ध, मृतस्वर पृथक् २ स्पष्ट जाने जाते हैं ।

स्व / व	बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
ध	अ	इ	उ	ए	ओ
न	इ	उ	ए	ओ	अ
प	उ	ए	ओ	अ	इ
फ	ए	ओ	अ	इ	उ
ब	ओ	अ	इ	उ	ए
भ	अ	इ	उ	ए	ओ
म	इ	उ	ए	ओ	अ
य	उ	ए	ओ	अ	इ
र	ए	ओ	अ	इ	उ
ल	ओ	अ	इ	उ	ए
व	अ	इ	उ	ए	ओ
श	इ	उ	ए	ओ	अ
ष	उ	ए	ओ	अ	इ
स	ए	ओ	अ	इ	उ
ह	ओ	अ	इ	उ	ए

अकारादीनां ग्रहराशिरेशत्वं तत्तशावदयं चाह ।

भौमेनयोर्ज्ञंग शिनोश्च गुरोर्भृगोस्ते क्षेत्रे शने-
रुदयिनोऽथ नवांशकेऽजाते । भौरे २४ करे २१
तु परैर्नोत्तिमभादिसत्तस्वादित्यर्तृस्त्विवउमुखो अपि
पंचकेषु ॥ ११ ॥

पूर्वश्लोकेन वर्णस्वराः कथिताः । अनेन श्लोकेन ग्रहराशि-
क्षत्रस्वराः प्रोच्यंताम् । भौमेनयोः भौमभास्करयोः क्षेत्रे राशौ

' ए ' वृद्ध और ' ओ ' मृत होवीहै । ऐसेंही ' ख ' का ' ई ' बाल ' उ ' कुमार ' ए ' युवा ' ओ ' वृद्ध और ' अ ' मृत होताहै । इसी प्रकार सबसे जानना चाहिये (१) ।

युवा स्वरके अन्त तक सिद्धिमें उत्कर्षता और वृद्ध, मृतमें अपचय होता है अर्थात् बालसे कुमार श्रेष्ठ और कुमारसे युवा अधिक श्रेष्ठ होता है और इनमें वृद्ध नेष्ट और वृद्धसे मृत अधिक नेष्ट होता है। यह जानना चाहिये । यदि अपना युवा और शत्रुका मृत स्वर जानके युद्धारम्भ किया जाय तो सिद्धि होती है ॥ १० ॥

वर्णस्वरचक्रम् ।

बाल	कुमार	युवा	वृद्ध	मृत
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह
नन्दा १।६।११	भद्रा २।७।१२	जया ३।८।१३	रिक्ता ४। ।१४	पूर्णा ५।१०।१५

(१) जिस नामका जो स्वर हो वह बाल, दूसरा कुमार, तीसरा तरुण, चौथा वृद्ध और पांचवां मृत होता है । यथा—रामका ' ए ' स्वर है अतः इनका ' ए ' बाल, ' ओ ' कुमार ' अ ' युवा ' इ ' वृद्ध और ' उ ' मृत स्वर है । यह चक्रमें स्पष्ट लिखा है ।

उदयस्वर होतेहैं । एवं मेष राशिसे चौबीस और बाकीके इक्कीस २ नवांशोंमें अ-इ-उ-ए-ओ नवांशेश होतेहैं । और रेवती आदि सातमें अ तथा पुनर्वसु आदि पांच २ में क्रमसे इ-उ-ए-ओ नक्षत्रस्वर होते हैं । यह सब नीचेके चक्रमें स्पष्ट लिखे हैं ॥ ११ ॥

ग्रहराशिनवांशनक्षत्राणां स्वरचक्रम् ।					
स्वराः	अ	इ	उ	ए	ओ
वाराः	भौम, सूर्य,	बुध. चंद्र.	गुरु.	शुक्र.	शनि.
राशयः	मेष, वृश्चिक, सिंह	कन्या, मिथुन कर्क	धनुर्मीन.	वृष, तुला	मकर, कुम्भ.
नवांशाः	मे. ९ वृ ९ मिथुन ६	मि. ३ कर्क ९सिं. ९	कन्या ९तु. ९ वृश्चि. ३	वृश्चिक ६ ध. ९ म ६	म ३ कुं. ९ मी. ९
नक्षत्राणि	रेवत्यादि ७	पुनर्वसु आदि ५	उ. फा. दि. ५	अनुराधा दि ५	श्रवणादि ५

उदाहरण ।

ग्रहस्वर–" देवदत्तका " ग्रहस्वर क्या है ? यह जाननेके लिये. देदोचाची रेवती इसके अनुसार रेवतीकी मीन राशि है और मीनका स्वामी बृहस्पति है अतः चक्रमें बृहस्पति उकारके नीचे होनेसे देवदत्तका ग्रहस्वर उकार है ।

राशिस्वर–नोयायीयू ज्येष्ठाके अनुसार " यज्ञदत्त " की वृश्चिक राशि होती है और चक्रमें वृश्चिक राशि अकारके नीचे है अतः यज्ञदत्तका राशिस्वर अ है ।

मेषवृश्चिकसिंहेषु अकार उदयी भवति । ज्ञशशिनोः बुधचंद्रयोः क्षेत्रे मिथुन-कन्या-कर्क-राशिषु इकारस्योदयः । गुरोर्बृहस्पतेः धनुर्मीनयोः उकार उदयं प्राप्नोति । भृगोः शुक्रस्य क्षेत्रे तुला-वृषयोः एकारस्योदयः । शनेः क्षेत्रे मकरकुम्भयोः ओकार-स्योदयः । एतेषां राशीनां स्वामिनो ये ग्रहाः अकारादीनां स्वामिनो भवन्ति । एवं ग्रहराशिस्वराः प्रोक्ताः । अथ नवांशेशत्वमाह । अजान्मेषादारभ्य भारे चतुर्विंशतिनवां-शानां मध्ये मेषस्य नवांशाः वृषस्य नवांशाः मिथुनस्य षडंशा-स्तेषु यस्य जन्म भवति तस्याकारः स्वामी । परतः इकरादौ करे२१एकविंशतिनवांशा ज्ञेयाः । इकारे मिथुनस्य त्रयोंशाः, कर्कस्य नवांशाः' सिंहस्य नवांशाः उकारे कन्यायाः नवांशाः, तुलायाः नवांशाः, वृश्चिकस्य त्रयोंशाः । एकारे वृश्चिकस्य षडंशाः धनुषो नवांशाः मकरस्य षडंशाः । ओकारे मकरस्य त्रयोंशाः, कुंभस्य नवांशा, मीनस्ये नवांशाः । एवम् अंशस्वराः प्रोक्ताः । अथ नक्षत्रस्वराः प्रोच्यंते । अन्तिमभादिसप्तसु रेवत्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु अकारः स्वामी । आदित्यतः पुनर्वसुतः इउमुखाः इकारोकाराद्याः । उक्तं च-पुनर्वसुतः पंचसु इकारः । उत्तराफाल्गुनीतः पंचसु उकारः । अनुराधातः पंचसु एकारः । श्रवणादिपंचसु ओकारः स्वामी । नक्षत्रस्वर इत्यर्थः ॥११॥

मंगल, सूर्य, बुध, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रह ।।के तथा इनकी राशियोंके अ इ उ ए ओ यह क्रमसे

मेषवृश्चिकसिंहेषु अकार उदयी भवति । ज्ञशशिनोः बुधचंद्रयोः क्षेत्रे मिथुन-कन्या-कर्क-राशिषु इकारस्योदयः । गुरोर्बृहस्पतेः धनुर्मीनयोः उकार उदयं प्राप्नोति । भृगोः शुक्रस्य क्षेत्रे तुला-वृषयोः एकारस्योदयः । शनेः क्षेत्रे मकरकुम्भयोः ओकार-स्योदयः । एतेषां राशीनां स्वामिनो ये ग्रहाः अकारादीनां स्वामिनो भवन्ति । एवं ग्रहराशिस्वराः प्रोक्ताः । अथ नवांशेशत्वमाह । अजान्मेषादारभ्य भारे चतुर्विंशतिनवां-शानां मध्ये मेषस्य नवांशाः वृषस्य नवांशाः मिथुनस्य षडंशा-स्तेषु यस्य जन्म भवति तस्याकारः स्वामी । परतः इकरादौ करे२१एकविंशतिनवांशा ज्ञेयाः । इकारे मिथुनस्य त्रयोंशाः, कर्कस्य नवांशाः' सिंहस्य नवांशाः उकारे कन्यायाः नवांशाः, तुलायाः नवांशाः, वृश्चिकस्य त्रयोंशाः । एकारे वृश्चिकस्य षडंशाः धनुषो नवांशाः मकरस्य षडंशाः । ओकारे मकरस्य त्रयोंशाः, कुंभस्य नवांशा, मीनस्य नवांशाः । एवम् अंशस्वराः प्रोक्ताः । अथ नक्षत्रस्वराः प्रोच्यंते । अन्तिमभादिसप्तसु रेवत्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु अकारः स्वामी । आदित्यतः पुनर्वसुतः इउमुखाः इकारोकाराद्याः । उक्तं च-पुनर्वसुतः पंचसु इकारः । उत्तराफाल्गुनीतः पंचसु उकारः । अनुराधातः पंचसु एकारः । श्रवणादिपंचसु ओकारः स्वामी । नक्षत्रस्वर इत्यर्थः ॥११॥

' मंगल, सूर्य, बुध, चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रहोंके तथा इनकी राशियोंके अ इ उ ए ओ, यह क्रमसे

नक्षत्रस्वर–गोशाशीशु शतभिषके अनुसार 'श्रीनिवास" का शतभिषा नक्षत्र है और यह चक्रमें ओकारके नीचे है। अतः श्रीनिवासका नक्षत्रस्वर ओ है।

द्वादशाब्दादीन् पञ्चस्वराणामाह।

रूपाब्देष्वथ हायनर्तुषु च ते तत्कार्थे भागान्तरा-
भुक्त्याऽऽद्याच्यऽपरेयने त्व इरिमो कृष्णान्ययोः
पक्षयोः। राधे भाद्रपदे सहस्यं इरिपाषाढे नभस्युं-
मधौ पौषे थैरपि शुक्र उर्ज्ज उदयी माघान्त्ययो-
रो स्तथा॥ १२॥

अस्मिन् श्लोके द्वादशवार्षिकस्वर-वार्षिकस्वरा-ऽयनक्षत्र-स्वर–ऋतुस्वर–मासस्वर–पक्षस्वरानाह–रूपाब्दाः द्वादशाब्दास्तेषु रूपाब्देषु द्वादशसु वर्षेषु प्रभवादिषु अकार उदयी भवति। प्रमाथ्यादिषु द्वादशवर्षेषु इकारः स्वामी। खरादिद्वादशवत्सरेषु उकारः स्वामी। शोभानादिषु द्वादशवर्षेषु एकारः स्वामी। राक्षसादिषु द्वादशवर्षेषु ओकारः स्वामी।

येषु वत्सरेषु यस्य जन्म भवति तेषां संवत्सराणां यः स्वामी भवति तं स्वरमारभ्य द्वादशाब्दिकस्वरो बालादिः ज्ञातव्यः। अथ वार्षिकस्वरमाह–प्रभवादिवर्षेषु अकाराद्या उदयं प्राप्नुवन्ति। प्रभववर्षे अकारः स्वामी, विभववर्षे इकारः स्वामी, शुक्लवर्षे ओकारः स्वामी, प्रमोदवर्षे एकारः स्वामी, प्रजापतिवर्षे ओकारः स्वामी, पुनः अंगिरसि वर्षे अकारः, श्रीमुखवर्षे इकारः, ... उकारः, युवसंवत्सरे एकारः, धातृसम्वत्सरे ओकारः।

एवम् ईश्वरादिवर्षेषु पंचसु अकाराद्याः । पुनः चित्रभान्वादिपंचसु अकाराद्याः । हेमलम्बादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः । पुनः शुभकृदादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः पिंगलादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः दुंदुभ्यादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनः । एवं पंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनो भवन्ति । 'तत्कायभागान्तराभुक्त्या' तेषां कायभागः एकादशांशः स एवान्तराभुक्तिः । अन्तरोदयाः द्वादशवार्षिकस्वरे अंतराभुक्त्या अंतरोदयेन स्वरा ज्ञातव्याः । तमेवान्तरमाह—एको वर्षः, एको मासः, दिनद्वयम्, त्रयश्चत्वारिंशद्घट्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारं स एव । एतावद्भिर्द्वादशवर्षस्य अस्वरे अंतरोदयः । अथ वर्षस्वरे अन्तरोदयः—एको मासः, दिनद्वयं, त्रयश्चत्वारिंशद्घट्यः, अष्टात्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारम् एतावद्भिर्मासदिनघटीपलैः अन्तरोदयः स्यात् अथ ऋतुस्वरमाह—वसन्तमारभ्य द्विसप्ततिभिर्दिनैः एकैकस्य ऋतोरुदयः स्यात् । वसन्ततोः षष्टिदिनानि, ग्रीष्मर्तोः द्वादशदिनानि यावदकारस्योदयः । ग्रीष्मर्तोरष्टचत्वारिंशद्दिनानि वर्षर्तोश्चतुर्विंशतिदिनानि यावदिकारस्योदयः । वर्षर्तोः षट्त्रिंशद्दिनानि, शरदृतोः षट्त्रिंशद्दिनानि यावदुकारस्योदयः। शरदृतोश्चतुर्विंशतिदिनानि, हेमन्तस्याष्टचत्वारिंशदिनानि यावदेकारस्योदयः । हेमन्तस्य द्वादशदिनानि, शिशिरर्तोः षष्टिदिनानि यावदोकारस्योदयः । एवम् ऋतुस्वराः प्रोक्ताः । ऋतुस्वरमध्ये एकादशांशेनान्तरोदयः—दिनानि षट्, द्वात्रिंशद् घट्यः, त्रिचत्वारिंशत्पलानि, अनेन प्रमाणेन एकादशान्तरोदयाः भवन्ति । अथायनस्वर-

नक्षत्रस्वर-गोशाशीशु शतभिषके अनुसार "श्रीनिवास" का शतभिषा नक्षत्र है और यह चक्रमें ओकारके नीचे है। अतः श्रीनिवासका नक्षत्रस्वर ओ है।

द्वादशाब्दादीन् पञ्चस्वराणामाह।

रूपाब्देष्वथ हायनर्त्तुषु च ते तत्कार्ये भागान्तरा-
भुक्त्यांवाच्यऽपरेयने त्व इरिमो कृष्णान्ययोः
पक्षयोः। राधे भाद्रपदे सहस्यं इरिषाषाढे नभस्युं-
मंधौ पौषे थैरपि शुक्र उर्ज उदयी माघान्त्ययो-
रो स्तथौ॥ १२॥

अस्मिन् श्लोके द्वादशवार्षिकस्वर-वार्षिकस्वरा-ऽयनक्षत्र-स्वर-ऋतुस्वर-मासस्वर-पक्षस्वरानाह-रूपाब्दाः द्वादशाब्दास्तेषु रूपाब्देषु द्वादशसु वर्षेषु प्रभवादिषु अकार उदयी भवति। प्रमाथ्यादिषु द्वादशवर्षेषु इकारः स्वामी। खरादिद्वादशवत्सरेषु उकारः स्वामी। शोभानादिषु द्वादशवर्षेषु एकारः स्वामी। राक्षसादिषु द्वादशवर्षेषु ओकारः स्वामी।

येषु वत्सरेषु यस्य जन्म भवति तेषां संवत्सराणां यः स्वामी भवति तं स्वरमारभ्य द्वादशाब्दिकस्वरो बालादिः ज्ञातव्यः। अथ वार्षिकस्वरमाह-प्रभवादिवर्षेषु अकाराद्या उदयं प्राप्नुवन्ति। प्रभववर्षे अकारः स्वामी, विभववर्षे इकारः स्वामी, शुक्लवर्षे ओकारः स्वामी, प्रमोदवर्षे एकारः स्वामी, प्रजापतिवर्षे ओकारः स्वामी, पुनः अंगिरसि वर्षे अकारः, श्रीमुखवर्षे इकारः, भाववर्षे उकारः, युवसंवत्सरे एकारः, धातृसम्वत्सरे ओकारः।

एवम् ईश्वरादिवर्षेषु पंचसु अकाराद्याः । पुनः चित्रभान्वादिपंचसु अकाराद्याः । हेमलम्बादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः । पुनः शुभकृदादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः पिंगलादिपंचसु अकाराद्याः । पुनः दुंदुभ्यादिपंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनः । एवं पंचसु वर्षेषु अकाराद्याः स्वामिनो भवन्ति । 'तत्कायभागान्तराभुक्त्या' तेषां कायभागः एकादशांशः स एवान्तराभुक्तिः । अन्तरोदयाः द्वादशवार्षिकस्वरे अंतराभुक्त्या अंतरोदयेन स्वरा ज्ञातव्याः । तमेवान्तरमाह-एको वर्षः, एको मासः, दिनद्वयम्, त्रयश्चत्वारिंशद्घट्यः, अष्टत्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारं स एव । एतावद्भिर्द्वादशवर्षस्य अस्वरे अंतरोदयः । अथ वर्षस्वरे अन्तरोदयः-एको मासः, दिनद्वयं, त्रयश्चत्वारिंशद्घट्यः, अष्टात्रिंशत्पलानि । एवं पुनर्द्वादशवारम् एतावद्भिर्मासदिनघटीपलैः अन्तरोदयः स्यात् अथ ऋतुस्वरमाह-वसन्तमारभ्य द्विसप्ततिभिर्दिनैः एकैकस्य ऋतोरुदयः स्यात् । वसन्तर्तोः षष्टिदिनानि, ग्रीष्मर्तोः द्वादशदिनानि यावदकारस्योदयः । ग्रीष्मर्तोरष्टचत्वारिंशद्दिनानि वर्षर्तोश्चतुर्विंशतिदिनानि यावदिकारस्योदयः । वर्षर्तोः षट्त्रिंशद्दिनानि,शरदृतोः षट्त्रिंशद्दिनानि यावदुकारस्योदयः।शरदृतोश्चतुर्विंशतिदिनानि, हेमन्तस्याष्टचत्वारिंशदिनानि यावदेकारस्योदयः । हेमन्तस्य द्वादशदिनानि, शिशिरर्तोः षष्टिदिनानि यावदोकारस्योदयः । एवम् ऋतुस्वराः प्रोक्ताः । ऋतुस्वरमध्ये एकादशांशेनान्तरोदयः-दिनानि षट्, द्वात्रिंशद् घट्यः, त्रिचत्वारिंशत्पलानि, अनेन प्रमाणेन एकादशान्तरोदयाः भवन्ति । अथायनस्वर-

माह—अवाचि दक्षिणायने अपरे सौम्यायने तु अ—इ—इमौ स्वरौ भवतः। उक्तं च—दक्षिणायने अकारः स्वामी, उत्तरायणे इकारः स्वामी। अस्मिन्नयने स्वरे अन्तरोदयः—षोडशदिनानि, एकविंशतिर्घट्यः, एकोनपञ्चाशत्पलानि। अथ पक्षस्वरमाह—इमौ अकारेकारस्वरौ कृष्णान्ययोः पक्षयोः स्वामिनौ भवतः। उक्तंच—कृष्णपक्षे अकारस्योदयः शुक्लपक्षे इकारस्योदयः। अत्र पक्षस्वरे अन्तरोदयः एकं दिनम्, एकविंशतिघटिकाः, एकोनपंचाशत्पलानि, अनेन प्रमाणेन एकादशांतरोदया भवन्ति। अथ मासस्वरमाह—राधे वैशाखे, तथा भाद्रपदे, सहसि मार्गशीर्षे अकारः स्वामी इषे आश्विने, आषाढे, नभस्ये श्रावणे इकार उदयं प्राप्नोति। मधौ चैत्रे, पौषे च उकार उदयी भवति। अथानन्तरं शुक्रे ज्येष्ठे, ऊर्जे कार्तिके एकार उदयी भवति। माघः प्रसिद्धः अन्त्यः फाल्गुनः तयोः माघान्त्योः ओकार उदयं प्राप्नोति। अत्रापि मासस्वरे अन्तरोदयः पूर्ववज्ज्ञातव्यः, दिनद्वयं, त्रिचत्वारिंशद्घट्यः, अष्टात्रिंशत्पलानि। अनेन श्लोकेन द्वादशाब्दिकवार्षिकायनऋतुमासपक्षस्वराः सान्तरोदयाः कथिताः। दिनस्वरघटीस्वरौ 'पंचाणेङ' इति श्लोकेन पूर्वमेव कथितौ ॥ १२ ॥

प्रभवादि बारह बारह संवत्सरोंमें अ—इ—उ—ए—ओ यह क्रमसे द्वादशवार्षिक स्वर होते हैं। और प्रभव विभव आदि प्रत्येक वर्षमें अ—इ आदि पांचों स्वर वार्षिक स्वर होते हैं। और वसन्त आदि षट ऋतुओंमें इनके ३६० दिनोंके पंचमांश (बहत्तर दिन) प्रमाणसे अ—इ आदि पांचों स्वर ऋतुस्वर होते हैं। तथा इन

द्वादशवार्षिक, वार्षिक और ऋतुस्वरोंके मध्यमें एकादशांश प्रमाणसे यही स्वर अन्तरस्वर होते हैं। (द्वादशवार्षिकका १ वर्ष, १ मास २ दिन ४३ घड़ी, ३८ पल एकादशांश होता है वार्षिकका १ मास, २ दिन, ४३ घड़ी, ४३ पल, एकादशांश होता है;-और+ऋतु स्वर का ६ दिन, ३२ घड़ी, ४३ पल, ३८ एकादशांश होता है। दक्षिणायनका अ ओर उत्तरायणका इ अयनस्वर होते हैं। एवं कृष्णपक्षका अ, और शुक्लपक्षका इ, यह पक्षस्वर होते हैं। और वैशाख, भाद्रपद, मार्गशीर्षका अ,-आषाढ आश्विन श्रावणका ई,-चैत्र पौषका उ; कार्तिक ज्येष्ठका ए; और माघ,फाल्गुनका ओ यह मासस्वर होते हैं। इनमें भी (अयनका १६ दिन, २१ घड़ी, ४९ पल एकादशांश होता है, पक्षस्वरका १ दिन २१ घड़ी, ४९ पल एकादशांश होता है, और मासका २ दिन ४३ घड़ी ३८ पल एकादशांश होता है)।

+ ऋतुगणना-सौरमान और चान्द्रमान दोनोंसे की जाती है, यथा सौरमानके अनुसार-" मृगादिराशिद्वयभानुभोगः षट्क ऋतूना शिशिरो वसन्तः। ग्रीष्मश्च वर्षाः शरदश्च तद्वद्धेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः ॥ १ ॥ "-मृगादि दो दो राशियोंके भानुभोगसे शरदादि छः ऋतु होते हैं। यथा-मकर कुंभके सूर्यमें **शिशिर**, मीन मेषमें **वसन्त**, वृष मिथुनमें **ग्रीष्म**, कर्क सिंहमें **वर्षा**, कन्या तुलामें **शरद्**, और वृश्चिक धनमें **हेमन्त** ऋतु होती है। एव **चान्द्रमानके** अनुसार-" मधुश्च माधवश्च वसन्तावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू। सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू। तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। इति श्रुतौ। "-चैत्र वैशाखमें **वसन्त**, जेठ आषाढमें **ग्रीष्म**, श्रावण भाद्रपदमें **वर्षा**, आश्विन कार्तिकमें **शरद्**, मृगशिर पौषमें **हेमन्त** और माघ फाल्गुनमें **शिशिर** ऋतु होती है। " श्रौतस्मार्तक्रिया सर्वा. कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु। तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥ १ ॥ " श्रौत और स्मार्त कर्म चान्द्र ऋतुमें और अन्य सौरऋतुमें करने चाहिये ऐसा ज्योतिषियोंका मत है। " वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्रसौरान्० " इति सिद्धान्तशिरोमणौ भास्कराचार्येणोक्तम्। ॥ युगपूर्वक वर्ष, अयन और ऋतु यह यहां सौर मानने चाहिये। अतएव उपरोक्त उदाहरण सौरमानसे दिया गया है।

द्वादशाब्दिकस्वरचक्रम				
अ	इ	उ	ए	ओ
प्रभव	प्रमा	खर	शोभ.	राक्ष
विभव	विक.	नंदन	क्रोधी	नल
शुक्ल	वृष	विजय	विश्वा	पिंग
प्रमोद	चित्र.	जय	पराभ	काल
प्रजाप.	सुभा	मन्म.	प्लवग	सिद्धा
अंगि.	तारण	दुर्मु.	कील	रौद्री
श्रीमु	पार्थि	हेमल	सौम्य	दुर्म
भाव	व्यय	विल	साधा	दुंदुभि
युवा	सर्वजि	विका	विरोध	रुधिर
धाता	सर्वधा	शार्वरी	परिध	रक्ता
ईश्वर	विरो	प्लव	प्रमाथी	क्रोधन
बहुधा	विक	शुभकृ	आनंद	क्षय.
१२	१२	१२	१२	१२

वार्षिकस्वरचक्रम				
अ	इ	उ	ए	ओ
प्र.	वि.	शु	प	प्र
अ.	श्री	भा	यु	धा.
ई	बहु	प्र	चि	वृ
चि	सु	ता	पा.	व्य
स	म	वि	वि	स
न	वि	ज	म	दु
हे	वि.	वि	शा	प्ल.
शु	शो	क्रो	वि.	प
प्ल	की	सौ	सा	वि.
प.	प्र.	आ	रा.	न
पि.	का.	सि	रौ.	दुर्म
दु	रु.	र.	क्रो.	क्ष
१२	१२	१२	१२	१२

अयनस्वरम्	
अ	इ
दक्षिणायने	उत्तरायणे

ऋतुस्वरचक्रम	
अ	वसन्ततोः ६० दिनानि, ग्रीष्मतोः १२ यावत्
इ	ग्रीष्मतोः ४८ दिनानि, वर्षतोः २४ यावत्
उ	वर्षतोः ३६ दिनानि, शरदतोः ३६ यावत्
ए	शरदतोः २४ दिनानि हेमन्तस्य ४८ यावत्
ओ	हेमन्तस्य १२ दिनानि, शिशिरतोः ६० यावत्

पक्षस्वरचक्रम	
अ	इ
कृष्णे	शुक्ले

मासस्वरचक्रम					
स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
मास	मा.मा-र्ग.चै.	आ. श्रा.आ.	भा.पौ.	ज्ये.का.	मा.फा.

मात्रास्वराद्याह ।

मात्रां नाममुखार्णजैव तु तदर्जमंत्रादिसिद्धौ हलच्-संख्यैक्यं तप संख्ययाऽक्षु भि यशोः काद्ये मि जीवाश्शुभे । पिण्डाज्मौत्रिकवार्णिकैक्यमहते शेषे चमूसत्कृतौ मात्राणग्रहपिण्डजीवभगृह्याजैक्योन्मं हँ यौगिकैः ॥ १२ ॥

मात्रास्वर-जीवस्वर-योगस्वर-पिण्डस्वरानाह । नाममुखार्णजैव मात्रादयश्च ज्ञेयाः । नाममुखे नामदौ यः अर्णो वर्णस्तज्जाता एतादृशी या मात्रा तदच् मात्रास्वर इत्यर्थः । सः मात्रास्वरो मन्त्रादिसिद्धौ शुभः । मात्रास्वरबले मन्त्रादिसाधनं कर्तव्यम् । तदुक्तम्–" साधनं मन्त्रयन्त्रस्य तन्त्रयोगं च सर्वदा । अधोमुखानि कार्याणि मात्रास्वरबले कुरु " इति । जीवस्वरानयनार्थे–हलच्संख्यैक्यं कर्तव्यम्, अक्षु स्वरेषु तपसंख्यया षोडशसंख्यया ग्राह्याः । यशोः यवर्गशवर्गयोः भिसंख्या चतुर्संख्या ग्राह्याः । काद्ये वर्गे-कवर्ग-चवर्ग-टवर्ग-तवर्ग-पवर्गेषु मिसंख्याः पंच पञ्च संख्या ग्राह्याः । नाम्नो ये हलः अचश्च तेषां कथितक्रमेणागतसंख्यायामज्झलयोरैक्यं जीवस्वरो भवति, स च शुभे मङ्गलकृत्ये ग्राह्यः । पंचाधिका चेत् संख्या, तदा पंचभिर्भागोऽनुपदिष्टोऽपि कार्यः । भागे यः शिष्टोंकः तत्संख्य एवाकारादिषु पंचसु स्वरो ग्राह्यः । शून्य-

शेषे तु पंचमः ओकार एव ग्राह्यः । जीवस्वरफलं चोक्तं स्वरोदये—"खानपानादिकं सर्वं वस्त्रालङ्कारभूषणम् । विद्यारम्भं विवाहं च कुर्याज्जीवस्वरोदये ।" इति । मात्रिकवार्णिकैक्यं-मात्रिको मात्रास्वरः वार्णिको वर्णस्वरः, तत्संख्ययोरैक्यं म ५ हृते शेषः" स पिंडाच् पिण्डस्वरः भवतीति संबंधः । स च सेनायाः सत्कृतौ" सत्कारे सज्जीकरणे ग्राह्यः । उक्तं च-" शत्रूणां देशभंगं च कोटयुद्धं च वेष्टनम् । सेनाध्यक्षस्तथा मंत्री कर्तव्यः पिण्डकोदये । " इति । यदा यस्य पिंडो युवा स्वरो भवति तदा तस्य सेनाधिपत्यं दातव्यम् । यौगिकस्वरमाह—मात्रार्णेति, मात्रास्वरवर्णस्वरौ प्रागुक्तौ, ग्रहस्वरस्तु तन्नामराशिग्रहणसम्बन्धात्, पिण्डस्वरः प्रागुक्तः, जीवस्वरश्च-भं जन्मनक्षत्रं, तदधिपस्वरः गृहं राशिस्तस्य च यः अत्र एषां मात्रादि—स्वराणां याः संख्यास्तासामैक्यं तत्पंचभिर्भक्तं शिष्टो यौगिकः स्वरः । तत्फलं " योगेन साधयेद्योगं देहस्थं ज्ञानसंभवम् । इति । " ॥ १३ ॥

नामके आदिवर्णकी जो मात्रा हो वही मात्रास्वर होता है यह मन्त्रादि साधनमें उपयोगी है । अ आ इ ई आदि स्वरोंकी संख्या १६, कवर्गकी ५ चवर्गकी ५, टवर्गकी ५, तवर्गकी ५, पवर्गकी ५, यवर्गकी ४ और शवर्गकी ४ इस प्रकार संख्या मानकर नामके स्वर और व्यंजनकी संख्याका योग करनेसे जीवस्वर होता है । यदि संख्या ५ से अधिक हो तो ५ का भाग देनेपर शेष 'जीवस्वर'

होता है। यह शुभ कार्योंमें अच्छा है। मात्रास्वर और वर्णस्वरकी सख्याके योगमें ५ का भाग देनेसे जो शेष रहे वह पिण्डस्वर होता है यह सेनाके सत्कार (स्वागत, सजावट, सेनापति आदि) में उपयोगी है और मात्रा, वर्ण ग्रह, पिण्ड, जीव, नक्षत्र और राशि इनके स्वरोंकी संख्याके योगमें ५ का भाग देनेसे जो शेष रहे वह यौगिकस्वर होता है ॥ १३ ॥

उदाहरण ।

मात्रास्वर–रामके आदिवर्ण रकारमें आ मात्रा होनसे रामका अकार मात्रा स्वर है । जीवस्वर–रामनाममें रेफ २ आकार २ मकार ५ अकार १ की संख्याके योग १० में ५ का भाग देनेसे शेष शून्य बचता है अतः रामका ओकार जीवस्वर है। पिण्डस्वर रामका वर्णस्वर एकार चतुर्थ होनेसे ४ संख्या है। और मात्रास्वर अकार प्रथम होनेसे १ संख्या है। अतः इनके योग ५ में ५ का भाग दिया तो शेष शून्य रहनेसे रामका ओकार पिण्डस्वर है। यौगिकस्वर–राम का मात्रास्वर प्रथम होनेसे १ संख्या, वर्णस्वर एकार चतुर्थ होनेसे ४ संख्या ग्रहस्वर (रामकी तुला राशि होनेसे तुलाधिप शुक्रका) एकारकी ४ संख्या, पिण्डस्वर ओकारकी ५ संख्या, जीवस्वर ओकारकी ५ संख्या नक्षत्रस्वर (रामके चित्रा नक्षत्रका) उकारकी ३ संख्या और राशिस्वर (तुलाराशिका एकारस्वर) की ४ संख्या, इस प्रकार मात्रा १ वर्ण, ४, ग्रह ४, पिण्ड ५, जीव ५ नक्षत्र ३, राशि ४ इन सबकी संख्याओंके योग २६ में ५ का भाग देनेसे शेष १ रहा अतएव रामका अकार यौगिकस्वर है ॥ १३ ॥

योगस्वरवर्णस्वरयोर्विशेषफलमाह ।

योगाद्या योगभजनं वर्णाद्यां सर्वमावहेत् ।
विशेषतश्च संग्रामे स हि सर्वस्वराग्रणीः ॥ १४ ॥

योगाचा—योगस्वरेण; योगस्वरबले सति योगभजनं योगसाधनं कर्तव्यम् । वर्णाचा—वर्णस्वरेण; वर्णस्वरबले सति सर्वकर्म आवहेत् कुर्यात् । विशेषतः संग्रामं कुर्यात् । यतः सर्वस्वराणां मध्ये अग्रणीर्मुख्यः । तस्माद्यदा वर्णस्वरो युवा भवति तदा सर्वकर्मसाधने अतीव शुभतरः ॥ १४ ॥

योगस्वरमें योगमार्ग साधन और वर्णस्वरमें सब कार्योंका साधन करना चाहिये । विशेषकरके संग्राम करना चाहिये, क्योंकि यही सब स्वरोंमें अग्रणी है ॥ १४ ॥

युद्धादौ भटादीनां जय-पराजय-साम्य-ज्ञानमाह ।

तेषामचां लयभरायमिति हलां च नाम्नोर्द्वयोस्तु मिलितां महतां पृथक्सा । हीना मृतिं विजयमाह तथाधिकां सा तुल्यां समं च समरं यदि वापि संधिम् ॥ १५ ॥

तेषाम् अ इ उ ए ओ इति प्रागुक्तानां पंचानां स्वराणां तत्सम्बन्धिनी मितिः संख्या ल ३-य १-भ ४-रा २-य १ एवंरूपा स्यात् । तेन अकछडधभवानां ल इति त्रिसंख्या । इखजठनमशानां य इति एका संख्या । उगझतपयषाणां भ इति चतुःसंख्या । एघटथफरसानां रा इति द्विसंख्या । ओचठदबलहानां य इति १ संख्या भवति । नाम्नोर्द्वयोर्जयपराजयज्ञानमिष्टं तन्नाम्नोर्ये हलः स्वरा वर्णाश्च तेषां सम्बन्धिनी सा संख्या लयभरायेत्युक्ता प्रतिस्वरं मिलिता सती पृथक्पंचभिर्हृता च या स्यात्सा संख्या चेदितरापेक्षया हीना, तदा तन्मृतिं हीननाम

संख्यस्य मरणमाह । इतरापेक्षयाधिका चेत्सा तदा विजयमाह । सा संख्येतरेतरं तुल्या समा चेत्तुल्यं समरं संग्राममाह । यदि वा पक्षांतरे सन्धि द्वयो राज्ञोर्हि । अत्र वर्णसंख्याग्रहणे निषिद्ध-वर्णानां ङकारणकारादीनां नाम्नि संभवे शून्यमेव ग्राह्यं न कदाचित्संख्या । इति ॥ १५ ॥

पूर्वोक्त रीतिके अनुसार पांच कोठोंमें ल ३-प १-भ४-रा२-य१ यह अंक लिखकर इनके नीचे अ इ उ ए ओ और क ख ग घ च आदि वर्ण लिखै तो जयपराजय देखनेका चक्र बन जाता है । इस चक्रसे दोनों योद्धाओंके नामके स्वर और व्यंजनोंकी संख्या लेकर उसमें पृथक् पृथक् ५ का भाग दे तो जिसका शेष न्यून हो उसका पराजय और जिसका शेष अधिक हो उसका विजय होता है । यदि बराबर बचै तो समान युद्ध होता है । अथवा सन्धि हो जाती है ॥१५॥

उदाहरण ।

राम-रावण, नामोंमें र २-आ ३-म १-अ३- रामनाम संख्या ९ एवं र २-आ ३-व ३-अ३-ण० अ३- रावण नामसंख्या १४ इन ९-१४ में पृथक् पृथक् ५ का भाग दिया तो ४-४ शेष रहे अतएव युद्धमें साम्यता प्राप्त होती है ।

जयपराजयचक्रम्				
ल ३	य १	भ ४	रा २	य १
अ	इ	उ	उ	ओ
क छ ड	ख ज ढ	ग झ त	घ ट थ	च ठ द
ध भ व	न म श	प य ष	फ र स	ब ल ह

इति समरसारे स्वरभेदजयपराजयप्रकरणम् ।

बालकुमारादिस्वरवशाद्बलमाह ।

पूर्वादिदिक्ष्वन्तरगाश्च तेऽचः सुखं जयेद्यूनि जयस्तु घाताते । स्यादाद्ययोर्नान्तिमयोः स्वशत्रुबलाबलाभ्यां भुवमाददीत ॥ १६ ॥

तेऽचः अकाराद्याः स्वराः पूर्वादिदिक्षु अन्तः अन्तरिता लेख्याः । एकां दिशं विहाय लेख्यास्तदेवाह । पूर्वस्यां दिशि अकारः । दक्षिणस्यां दिशि इकारः । पश्चिमायां दिशि उकारः । उत्तरस्यां दिशि एकारः । मध्ये ओकारः लेख्यः । यस्य योद्धुः वर्णस्वरो युवा यस्यां दिशि भवति संग्रामे तस्यां दिशि

ऐशानीतःसितकुजशनिरविखगराशयः प्रतीचीन्दोः ।
गुरुगृहयोरक्ष उदग्दिशौज्ञगृहयोस्तु वायव्याम् ॥१७॥

रविचन्द्रहर्ति विवक्षुस्तत्तद्गृहराशीनां दिग्विशेषे निवेशमाह । ऐशानीतः ईशानकोणमारभ्य एते राशयो भवन्ति । कोऽर्थ-ईशानकोणे सितराशिः वृषस्तुला च बलिनौ भवतः । पूर्वस्यां दिशि भौमराशी मेषवृश्चिकौ बलिनौ भवतः । शनिराशी मकरकुम्भौ आग्नेय्यां बलिनौ भवतः । रविराशिः सिंहो दक्षिणे च बली स्यात् । इन्दोः प्रतीची दिक् चन्द्रराशिः कर्कः पश्चिमायां बली स्यात् । गुरुगृहयोः अक्ष उदक् दिशौ ज्ञातव्यौ । धनुषो राशेर्निर्ऋतिदिग् ज्ञातव्या । मीनराशेश्चोत्तरा दिग् ज्ञेया । ज्ञगृहयोः बुधराश्योः मिथुनकन्ययोः वायव्यदिग् ज्ञेया । एतासु दिक्षु एतेषा राशीनां वास स्यादित्यर्थः ॥१७॥

ईशानसे आरंभ करके शुक्र, भौम, शनि और सूर्यकी राशि बलवान् होती है अर्थात् ईशानमें वृप तुला, पूर्वमें वृश्चिक मेप, अग्निमें मकर कुम्भ, दक्षिणमें सिंह राशि बलवान् होती है । तथा पश्चिममें कर्क, नैऋत्यमें धन, उत्तरमें मीन और वायव्यमें कन्या मिथुन राशि बलवान् होती है ॥ १७ ॥

चन्द्रः यामेयामे प्रहरेप्रहरे ईशादिविदिशां वृषकुम्भौ, मृगसिंहौ, धनुः, कन्यामिथुने क्रमेण हन्ति । तदेवाह—चन्द्रः स्वोदयात्प्रथमप्रहरे ईशानकोणे स्थितो वृषराशिं तथा च कुम्भराशिं हन्ति । द्वितीयप्रहरे अग्निकोणे स्थितो मकरराशिं तथा च सिंहराशिं हन्ति । तृतीयप्रहरे नैर्ऋत्यकोणे धनू राशिं हन्ति। चतुर्थप्रहरे वायुकोणे कन्याराशिं तथा च मिथुनराशिं हन्ति । एते राशयो यासु दिक्षु तासु स्थित्वा युद्धं न कुर्यादित्यर्थः १९॥

ईशानसे आरम्भ करके सब कोणोंमें प्रहर प्रहरमें चन्द्रमा अपने उदयसे क्रमसे उक्त राशियोंका घात करता है । यथा ईशानमें वृष कुम्भ राशिवालोंका, अग्निमें मृग (मकर) सिंहवालोंका, नैर्ऋत्यमें धनवालोंका और वायव्यमें कन्या मिथुनवालोंका घात करता है । अतएव यह राशि जिस कोणमें हो उस कोणमें स्थित होकर युद्धादि नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

चन्द्रहतदिक्चक्रम् ॥

ई. २।११	पू	आ ५।१०
उ.		द.
वा. ३।६	प.	नै. ९

उदाहरण ।

यथा चैत्र शुक्ल ९ को कर्कका चन्द्रमा है । और मनमोहनका सिंह राशिका अग्निकोणमें घात होता है । अतएव आग्नेयस्थ होकर मनमोहनको युद्धादि करना उचित नहीं है ॥ १९ ॥

दक्षिणां दिशं हन्ति । प्रागन्त्ययोर्यः प्रथमप्रहरस्य प्रथमार्द्धः अन्तस्य चतुर्थप्रहरस्य द्वितीयार्द्धस्तयोर्युगं तेन प्रथमचतुर्थयामयोः प्रथमद्वितीयार्द्धयुग्मेन याम्यां हन्तीति भावः । एवं रविदग्धा दिशः तत्काले शुभकर्म्मसु त्याज्याः ॥ १८ ॥

सूर्य दिनमें प्रथम प्रहरके दूसरे यामार्द्धसे दो दो यामार्द्धोंमें अर्थात् प्रथमप्रहरका अन्त्य यामार्द्ध और द्वितीय प्रहरका आद्य यामार्द्ध इस क्रमसे पूर्व आदि तीसरी तीसरी दिशाका निहत (घात) करता है । अतः प्रथम प्रहरका आद्ययामार्द्ध और अन्त्य (चतुर्थ) प्रहरके अन्त्य यामार्द्धमें दक्षिण दिशाका घात करता है ॥ १८ ॥

रविहतदिक्चक्रम् ।		
ई.	पूर्व ६-७	आ.
उत्तर ४-५		दक्षिण १-८
वा	पश्चिम २-३	नै.

उदाहरण । जो दिशा सूर्यसे निहत हो रही हो उस दिशामें उक्त यामार्द्धोंमें यात्रा युद्ध आदि नहीं करना चाहिये । यथा मध्याह्नके समय उत्तर दिशा रविहत है तो इस दिशामें यात्रा नहीं करनी चाहिये । अथवा इस समय इस दिशामें स्थित होकर द्यूत वा युद्धादि भी नहीं करना चाहिये ।

चन्द्रहता विदिग्दिशस्तत्राशींश्चाह ।

ईशाद्विदिशौ चन्द्रो यामे यामे निहन्ति वृषकुंभौ ।
मृगसिंहौ धन्विनमथ कन्यामिथुनौ क्रमेणैवं ॥१९॥

चन्द्रः यामेयामे प्रहरेप्रहरे ईशादि विदिशां वृषकुम्भौ, मृगसिंहौ, धनुः, कन्यामिथुने क्रमेण हन्ति । तदेवाह-चन्द्रः स्वोदयात्प्रथमप्रहरे ईशानकोणे स्थितो वृषराशिं तथा च कुम्भराशिं हन्ति । द्वितीयप्रहरे अग्निकोणे स्थितो मकरराशिं तथा च सिंहराशिं हन्ति । तृतीयप्रहरे नैर्ऋत्यकोणे धनू राशिं हन्ति। चतुर्थप्रहरे वायुकोणे कन्याराशिं तथा च मिथुनराशिं हन्ति । एते राशयो यासु दिक्षु तासु स्थित्वा युद्धं न कुर्यादित्यर्थः ॥१९॥

ईशानसे आरम्भ करके सब कोणोंमें प्रहर प्रहरमें चन्द्रमा अपने उदयसे क्रमसे उक्त राशियोंका घात करता है । यथा ईशानमें वृष कुम्भ राशिवालोंका, अग्निमें मृग (मकर) सिंहवालोंका, नैर्ऋत्यमें धनवालोंका और वायव्यमें कन्या मिथुनवालोंका घात करता है । अतएव यह राशि जिस कोणमें हो उस कोणमें स्थित होकर युद्धादि नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

चन्द्रघातदिक्चक्रम् ॥

ई. २।११	पू.	आ. ५।१०
उ.		द.
वा. ३।६	प.	नै. ९

उदाहरण ।

यथा चैत्र शुक्ल ९ को कर्कका चन्द्रमा है । और मनमोहनका सिंह राशिका अग्निकोणमें घात होता है । अतएव आग्नेयस्थ होकर मनमोहनको युद्धादि करना उचित नहीं है ॥ १९ ॥

गूढापराख्यकेतुहतदिग्विदिश आह ।

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
षष्ठीं षष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रां शुभां न रणे ॥२०॥

गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा षष्ठीं षष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न शुभम् । तदेव प्रकटयति। प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति। द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वां दिशं हन्ति। पञ्चमेऽर्द्धयामे वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हंति । सप्तमेऽर्द्धयामे ईशानदिशं हन्ति। अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिशि युद्धयात्रायां वर्ज्याः। तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः॥२०॥

ग्रहभेद नाम जो गूढाख्य है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा-प्रथम प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीसरेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दाक्षिणका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सन्मुख यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढापराख्यकेतुहतदिग्विदिश आह ।

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
षष्ठीं षष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभा न रणे ॥२०॥

गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा षष्ठीं षष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न शुभम् । तदेव प्रकटयति।प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति। द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वां दिशं हन्ति। पञ्चमेऽर्द्धयामे वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हंति । सप्तमेऽर्द्धयामे ईशानदिशं हन्ति। अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिशं युद्धयात्रायां वर्ज्याः। तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या,संग्रामो न कर्तव्यः॥२०॥

ग्रहभेद नाम जो गूढाख्य है वह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें अग्निय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा-प्रथम प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीसरेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षिणका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सन्मुख यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढापराख्यकेतुहतदिग्विदिश आह।

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च।
षष्ठीं षष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रां शुभां न रणे ॥२०॥

गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा षष्ठीं षष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत्। तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात्। संग्रामे एतन्न शुभम्। तदेव प्रकटयति। प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति। द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति। पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां दिशं हन्ति। चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वां दिशं हन्ति। पञ्चमेऽर्द्धयामे वायवीं दिशं हन्ति। षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हंति। सप्तमेऽर्द्धयामे ईशानदिशं हन्ति। अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति। एवं रात्रावपि ज्ञेयाः। एता दिशो विदिशश्च दिवानिशं युद्धयात्रायां वर्ज्याः। तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या, संग्रामो न कर्तव्यः॥२०॥

ग्रहभेद नाम जो गूढाख्य है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है। यथा—प्रथम प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीसरेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षिणका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और ऐसे ही रात्रिमें घात करता है। अतएव रणमें इसके सन्मुख यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढचक्रम् ।		
ई ७।१५	पूर्व ४।१२	आ. १।९
उ. २।१०	+ + +	व ६।१४
वा. १।२।५	पश्चि. ८।१६	नै ३।११

उदाहरण ।

यथा-रामको रणके निमित्त दक्षिण यात्रा करनी है तो दिन वा रात्रिमें तीसरे प्रहरका उत्तरार्द्ध त्यागकर यात्रा करनी उचित है। रणके अतिरिक्त मल्लयुद्ध वा द्यूत आदिमें भी यह बल उपयोगी है.

रविचन्द्रयोःपृष्ठदिगादिस्थितौ जयपराजयौ चाह ।

पृष्ठेऽर्को[१] यदि[२] दक्षिणेऽपि पुरतश्छायाथ वामे[७] जयः किन्त्वर्के वहति यायिनि[११] विधौ वाहस्थिते[१२] स्थायिनि । छाया पृष्ठगदक्षिणा निशि शशी[१] वामेऽग्रतो वा जयो यातुश्चन्द्रवहे[१७] परस्य तु रवेर्वामिः शशीष्टः क्षयी[२२] ॥ २१ ॥

यायिनः स्थायिनोऽपि अर्को यदि दिने पृष्ठे, स्वपृष्ठप्रदेशे दक्षिणप्रदेशे स्यात्तदा छाया पुरतः स्वाग्रप्रदेशे वामप्रदेशे वा पतेत् तदा यायिस्थायिनोर्जयः । किन्त्वयं विशेषः । अर्के वहति दक्षिणभागस्थे पिंगलाख्यरविनाड्यां प्राणवायौ वहत्यर्के च पृष्ठदक्षस्थे यायिनि जयो न स्थायिनि । पृष्ठदक्षिणस्थेर्के विधौ चन्द्रमसि वाहस्थिते वहति वामभागस्थेडाख्यचन्द्रनाड्यां प्राणवायौ वहति स्थायिनि जयः । निशि रात्रौ तु शशी

गूढापराख्यकेतुहतदिग्विदिश आह ।

गूढाख्योऽर्द्धप्रहरैराग्नेयीतस्तथा दिवा निशि च ।
षष्ठीं षष्ठीं हन्यात् तन्मुखयात्रा शुभा न रणे ॥२०॥

गूढाख्यः गूढनामग्रहभेदः अष्टभिरर्द्धप्रहरैः आग्नेयीतः अग्निकोणतः दिवा दिवसे निशि रात्रौ वा षष्ठीं षष्ठीं दिशं हन्यात् घातयेत् । तत्सम्मुखं यात्रा शुभा न स्यात् । संग्रामे एतन्न शुभम् । तदेव प्रकटयति।प्रथमेऽर्द्धयामे गूढो आग्नेयीं दिशं हन्ति। द्वितीयेऽर्द्धयामे उत्तरां दिशं हन्ति । पञ्चमेऽर्द्धयामे नैर्ऋत्यां दिशं हन्ति । चतुर्थेऽर्द्धयामे पूर्वां दिशं हन्ति। पञ्चमेऽर्द्धयामे वायवीं दिशं हन्ति । षष्ठेऽर्द्धयामे दक्षिणं दिशं हंति । सप्तमेऽर्द्धयामे ईशानदिशं हन्ति। अष्टमेऽर्द्धयामे पश्चिमां दिशं हन्ति । एवं रात्रावपि ज्ञेयाः । एता दिशो विदिशश्च दिवानिशं युद्धयात्रायां वर्ज्याः। तस्य संमुखे यात्रा न कर्तव्या,संग्रामो न कर्तव्यः॥२०॥

ग्रहभेद नाम जो गूढाख्य है यह दिन रात्रिमें अर्द्ध प्रहरमें आग्नेय दिशासे छठी छठी दिशाका घात करता है । यथा—प्रथम प्रहरसे आरंभ करके पहले यामार्द्धमें आग्नेयका, दूसरेमें उत्तरका, तीसरेमें नैर्ऋत्यका, चौथेमें पूर्वका, पांचवेंमें वायव्यका, छठेमें दक्षिणका, सातवेंमें ईशानका और आठवेंमें पश्चिम दिशाका दिनमें और ऐसे ही रात्रिमें घात करता है । अतएव रणमें इसके सन्मुख यात्रा शुभ नहीं होती है ॥ २० ॥

गूढचक्रम् ।		
ई. ७।१५	पूर्व ४।१२	आ. १।९
उ. २।१०	+ + +	द ६।१४
वा. १२।५	पश्चि. ८।१६	नै ३।११

उदाहरण ।

यथा-रामको रणके निमित्त दक्षिण यात्रा करनी है तो दिन वा रात्रिमें तीसरे प्रहरका उत्तरार्द्ध त्यागकर यात्रा करनी उचित है। रणके अतिरिक्त मल्लयुद्ध वा द्यूत आदिमें भी यह चक्र उपयोगी है.

रविचन्द्रयोःपृष्ठदिगादिस्थितौ जयपराजयौ चाह ।

पृष्ठेऽर्को यदि दक्षिणेऽपि पुरतश्छायाथ वामे जयः किंत्वर्के वहतीह यायिनि विधौ वाहस्थिते स्थायिनि । छाया पृष्ठगदक्षिणा निशि शशी वामेऽग्रतो वा जयो यातुश्चन्द्रवहे परस्य तु रवेर्वामैः शशीष्टैः क्षयी ॥ २१ ॥

यायिनः स्थायिनोऽपि अर्को यदि दिने पृष्ठे, स्वपृष्ठप्रदेशे दक्षिणप्रदेशे स्यात्तदा छाया पुरतः स्वाग्रप्रदेशे वामप्रदेशे वा पतेत् तदा यायिस्थायिनोर्जयः । किन्त्वयं विशेषः । अर्के वहति दक्षिणभागस्थे पिंगलाख्यरविनाड्यां प्राणवायौ वहत्यर्के च पृष्ठदक्षस्थे यायिनि जयो न स्थायिनि । पृष्ठदक्षिणस्थेऽर्के विधौ चन्द्रमसि वाहस्थिते वहति वामभागस्थेडाख्यचन्द्रनाड्यां प्राणवायौ वहति स्थायिनि जयः । निशि रात्रौ तु शशी

चन्द्रो निजवामे अग्रतो वा चेत्तदा छाया स्वपृष्ठदेशे स्वदक्षिण-प्रदेशे च गच्छति तदा यायिस्थायिनोर्जयः। किंत्वयं विशेषः। वामाग्रतो गते चन्द्रे चन्द्रनाडी वहति च यातुर्जयो न स्थायिनः। परस्य स्थायिनस्तु वामाग्रगे चेत्सूर्यनाडीवहति च न यायिनः। क्षयी क्षीणः शशी चन्द्रो वाम एवेष्टः ॥ २१ ॥

यदि सूर्य पृष्ठभाग (पीठपीछे) या दक्षिण भागमें हो तो छाया आगे वा बांयी तर्फ होती है। उस समय युद्ध करनेसे स्थायी और यायी दोनोंका जय होता है। किंतु यदि उस समय सूर्यनाड़ी दक्षिण स्वर चलता होगा तो यायी (चलनेवाले) का जय होता है। और चन्द्र वामस्वर चलता होगा तो स्थायी (स्थिर रहनेवाले) का जय होता है। ऐसे ही रात्रिमें चन्द्रमा बांयी तर्फ वा आगे हो तो छाया दक्षिण वा पृष्ठ भागमें होती है। उस समय युद्ध करनेसे दोनोंका जय होता है। किंतु यदि उस समय चन्द्रनाड़ी वामस्वर चलता होगा तो यायी और सूर्यनाड़ी दक्षिणस्वर चलता होगा तो स्थायी राजाका जय होता है। और क्षीण चन्द्रमा वाम भागमें शुभ होता है ॥ २१ ॥

उदाहरण ।

सूर्य-रामके पृष्ठभाग और रावणके दक्षिण भागमें होनेसे छाया अग्रभाग और वामभागमें है सो दोनोंका जय प्राप्त होता है, किन्तु रामका स्वर दक्षिण चल रहा है। अर्थात् नासिकाके दक्षिणछिद्रसे श्वास चल रहा है अतएव रामचन्द्रका ही जय होगा। मल्लयुद्धादिमें भी यह उपयोगी हो सकता है।

प्रागादिदिगवस्थितचंद्रवशात्स्थायियायिनोर्जयपराजयम् ।

प्राचीमुदीचीं वा चन्द्रे गते स्थायी जयी भवेत् ।
प्रतीचीदक्षिणादिक्स्थे यायी विजयमाप्नुयात् ॥२२

प्राचीं पूर्वदिशं गते चन्द्रे उदीचीम् उत्तरां दिशं गते चन्द्रे उत्तरायणे च सति तदा स्थायी जयी भवेत । प्रतीची पश्चिमा दिक् दक्षिणा अवाची दिक् ते प्रति गते चन्द्रे दक्षिणायने सति तदा यायिनो जयो भवेत् ॥ २२ ॥

पूर्व और उत्तर दिशामें चन्द्र हो तो स्थायी राजाका जय होता है । और दक्षिण तथा पश्चिम गत चन्द्र हो तो यायी राजाका जय होता है ॥ २२ ॥

वायुबलमाह ।

वायुः पृष्ठे दक्षिणे च वहन्सूचयते बलम् ।
सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः ॥ २३ ॥

पृष्ठे दक्षे च वहन् वायुर्बलं सूचयते । यथा प्राङ्मुखस्य पाश्चात्यो दक्षिणात्यो वायुर्बलसूचकः । संमुखीनः सम्मुखे वहन्वामश्च भटानां योधानां भंगं पराजयं सूचयति ॥ २३ ॥

द्वंद्वयुद्धके समय पीठकी ओर और दक्षिण भागकी ओर वायु चले तो युद्ध करनेवालेको बल देती है । और सम्मुख तथा वामभागकी वायु चलै तो योद्धाओंके भंग होनेकी सूचना देती है ॥ २३ ॥

उदाहरण ।

यथा–पूर्वकी ओर और पश्चिमकी ओर मुख करके युद्ध करते समय यदि पश्चिम वा दक्षिणकी ओरसे हवा चल रही हो तो पूर्वकी ओर मुख करके जो युद्ध करता है उसीका जय होगा । यह वायु बल मल्लयुद्धमें विशेष उपयोगी है ॥ २३ ॥

राहुबलमाह ।

प्राग्वातान्तकशम्भुपाशिहुतभुक्पौलस्त्यरक्षोदिशो
यामार्द्धैरगुरह्नि पाशिककुभोऽसौ पष्ठपष्ठीं निशि ।

पृष्ठे दक्षिणतः शुभो द्विघटिकोऽसौ तुर्यतुर्या-
व्रजेन्नीशावाक्पवनेन्द्रराक्षसहिमग्वग्निप्रतीचीदिशः॥२४॥

अगुः राहुः अह्नि दिने प्राक् पूर्वदिशं प्रथमेऽर्द्धप्रहरे याति। द्वितीयार्द्धप्रहरे राहुर्वायुदिशं याति। तृतीयार्द्धप्रहरे अन्तकदिशं–दक्षिणदिशं याति। चतुर्थेऽर्द्धप्रहरे शम्भुदिशम् ईशानकोणं याति। पंचमेऽर्द्धयामे पश्चिमदिशं याति। षष्ठे-ऽर्द्धप्रहरे हुतभुग्दिशम् अग्निकोणं याति। सप्तमेऽर्द्धप्रहरे पौलस्त्यदिशम् उत्तरां दिशं याति। अष्टमेऽर्द्धप्रहरे रक्षोदिशं निर्ऋतिदिशं याति। एवं दिनेष्वर्द्धयामराहुः। अथ पाशिककुभः पाशी वरुणस्तस्य दिशं पश्चिमां दिशमारभ्य निशि रात्रौ षष्ठीं षष्ठीं दिशं याति राहुः। तत्र क्रममाह–रात्रौ प्रथमार्द्धप्रहरमारभ्य पश्चिमाग्निकोणोत्तरनैर्ऋत्यपूर्ववायुदक्षिणेशानेषु राहुर्याति। अयं पृष्ठे दक्षिणतः शुभः। असौ द्विघटिको राहुः तुर्यतुर्यां चतुर्थीं चतुर्थीं दिशं व्रजति। तस्य क्रममाह–ईशानकोणे, अवाचि दक्षिणस्यां, पवने वायुकोणे, इन्द्रे पूर्वस्यां दिशि, राक्षसे निर्ऋतिकोणे, हिमगोरुत्तरे, अग्निकोणे, प्रतीच्यां च, एतासु दिक्षु घटिकाद्वयेन एकैकां दिशं याति। पुनर्मध्याह्नोत्तरसंध्यावधि एवं वसनक्रमः॥ २४॥

राहु:-दिनमें–पूर्व, वायु, दक्षिण, ईशान, पश्चिम, अग्नि, उत्तर और नैर्ऋत्य इन दिशाओंमें क्रमसे आधी आधी प्रहरमें जाता है

और यही राहु रात्रिमें–आधी आधी प्रहरमें पश्चिम दिशासे आरंभ करके छठी छठी दिशामें जाता है। यह पृष्ठ तथा दक्षिण शुभ होता है। और यही राहु–ईशानसे चौथी चौथी दिशा अर्थात्–ईशान दक्षिण, वायु, पूर्व, नैर्ऋत्य, उत्तर, अग्नि और पश्चिम दिशाओंमें दोदो घडीमें गमन करता है ॥ २४ ॥

दिवाराहुचक्रम्।			निशि राहुचक्रम्।			द्विघटिकं राहुचक्रम्।		
ई ४	पूर्व १	अ ६	ई. ८	पू ५	अ २	ई १ २ घडी	पूर्व ७–८	अ. १३ १४
उत्त. ७		दक्षि ३	उ ३		द ७	उत्तर ११ १२	एवमेव क्रमेण मध्याह्नोत्तर भ्रमति	दक्षि. ३–४
वा. २	पश्चि. ५	नै ८	वा. ६	प १	नै ४	वा. ५ ६	प. १५–१६	नै. ९ १०

उदाहरण।

रंगनाथजीको पूर्वदिशामें जाना है। अतएव राहुबल प्राप्त होनेके लिये प्रातःकालसे दूसरी और तीसरे प्रहरके पूर्वार्द्धमें वा रात्रिमें पहली और चौथीके पूर्वार्द्धमें गमन करना शुभ है। अथवा शीघ्रता हो तो प्रातःकालसे तीसरी चौथी वा पन्द्रहवीं सोलहवीं घडीमें गमन करना भी श्रेष्ठ है। द्यूत आदिमें भी राहुबल देखना आवश्यक है ॥ २४ ॥

योगिनीबलमाह।

प्राक्सोमानलरक्षोऽवाक्पाशीरेशदिक्षु दर्शान्तैः। तिथिभिस्तिथिपदतोऽर्द्धप्रहरे रिनवत्तु योगिनी शस्ता॥ २५ ॥

प्राक् पूर्वदिक्, सोम उत्तरदिक्, अनलदिगग्निकोणः, रक्षोदिक् नैर्ऋत्यकोणः, अवाक् दक्षिणादिक्, पाशी पश्चिमा दिक्, इरो वायुदिक्, ईशा ईशानदिक् एतासु दिक्षु प्रतिपदमारभ्य दर्शान्तैः तिथिभिर्योगिनी भ्रमति। तदाह—प्रतिपन्नवम्यां पूर्वदिशि, द्वितीयादशम्यां चोत्तरदिशि, तृतीयैकादश्यां चाग्निकोणे, चतुर्थ्यां द्वादश्यां च निर्ऋतिकोणे, पंचम्यां त्रयोदश्यां च दक्षिणस्यां दिशि, षष्ठ्यां चतुर्दश्यां च पश्चिमायां, सप्तम्यां पूर्णिमायां च वायव्याम्, अष्टम्याममायां चैशानकोणे योगिनी भ्रमति। तिथिपदतः तिथिस्थानात् अर्द्धप्रहरैर्योगिनी अष्टसु अर्द्धप्रहरेषु पूर्वक्रमेणैव भ्रमति। सा योगिनी इनवत् सर्पवत् पृष्ठदक्षिणतः शुभा भवति॥ २५॥

प्रतिपदासे आदि लेकर अमावस पर्यन्त पूर्व, उत्तर, अग्नि, नैर्ऋत्य, दक्षिण, पश्चिम, वायव्य और ईशान इस क्रमसे इन दिशाओंमें योगिनी भ्रमण करती है। अर्थात् प्रतिपदा और नवमीको पूर्वमें, २–१० को उत्तरमें, ३–११ को अग्निमें ४–१२ को नैर्ऋत्यमें, ५–१३ को दक्षिणमें, ६–१४ पश्चिममें, ७–१५ को वायव्यमें और ८–३० को ईशानमें योगिनी रहती है। और तिथिके आरम्भसे लेकर अष्टमांश प्रमाण आधी आधी प्रहरसे उपरोक्त दिशाक्रमानुसार एकही तिथिमें आठों दिशाओंमें योगिनी भ्रमण करती है। और सूर्यकी तरह पृष्ठकी तथा दक्षिणयोगिनी शुभ होती है॥ २५॥

उदाहरण।

रंगनाथजी त्रयोदशीको पूर्वकी यात्रा करेंगे अतएव १३ को योगिनीका निवास दक्षिण दिशामें दाहिना है तो श्रेष्ठ है। यदि

त्रयोदशीको न जायँ और दशमीको ही जाना पड़े तो उस दिन पूर्वमें योगिनी संमुख होनेसे शुभ नहीं है । किन्तु तिथिपदतः इसके अनुसार दशमीकी तीसरी प्रहरके पूर्वार्द्धमें दक्षिणमें और उत्तरार्द्धमें पश्चिममें योगिनी रहती है । अतएव उस समय गमन करनेसे योगिनी बल श्रेष्ठ रहता है ॥ २५ ॥

योगिनीवासचक्रम् ।			तिथिपदतो योगिनीचक्रम् ।		
ईशा. ८-३०	तिथि-१-९ पूर्व	३-११ अग्नि	८ यामा ईशान	१-यामा पूर्व-	३-यामा अग्नि
उत्तर. २-१०	* * *	द. ५-१३	२-यामा-र्द्धं उत्तर	प्रतितिथौ अष्टमांशेन भ्रमति ।	५-यामा र्द्धदक्षिण
वाय. ७-१५	पश्चि ६-१४	नैऋ ४-१२	७-या वायव्य	६-यामार्द्धं पश्चिम,	४-या नैर्ऋत्य-

योगिनीनामान्याह ।

ब्राह्मी कौमारी वाराही वैष्णव्यथैन्द्री च । स्याच्चंडिका च माहेश्वरी महालक्ष्म्यभिख्या च ॥ २६ ॥

ब्राह्मी, कौमारी, वाराही, वैष्णवी, ऐन्द्री, चाण्डिका, माहेश्वरी और महालक्ष्मी यह प्रतिपदादि क्रमसे उनके नाम हैं ॥ २६ ॥

राहुयुक्तयोगिनीबलप्रशंसामाह ।

पृष्ठे दक्षे योगिनी राहुयुक्ता यस्यैको यं शत्रुलक्षं निहन्ति । श्रेष्ठं सर्वेभ्यो बलेभ्यस्तदेतत् संक्षेपो ऽयं सर्वसारो ऽभ्यधायि ॥ २७ ॥

पृष्ठे पृष्ठभागे, दक्षे दक्षिणभागे राहुयुक्ता योगिनी यस्य भवेदयम् एकः शूरः शत्रूणां लक्षं निहन्ति मारयति । तदेतद्योगिनीराहुबलं सर्वेभ्यः श्रेष्ठम् । मया अयं संक्षेपः सर्वसारः सर्वबलसारः अभ्यधायि कथितः एतद्वचनं राहुयोगिन्योः प्रशंसामात्रमेव ॥ २७ ॥

जिसके राहुयुक्त योगिनी पृष्ठकी या दक्षिण होय तो वह मनुष्य अकेला ही लाख शत्रुओंको मार सकता है। अतएव यह राहुयोगिनी बल सब बलोंसे श्रेष्ठ है। मैंने इसको सबका सार लेकर संक्षेपसे कहा है ॥ २७ ॥

उदाहरण ।

श्रीमान् देवीसिंह महोदय चैतकृष्ण पञ्चमीको उत्तर यात्रा करैंगे । अतएव यदि उस दिन एक महर दिन चढे पीछे दूसरे प्रहरके पूर्वार्द्धमें गमन करैं तो राहुयुक्त योगिनी पीठ पीछेकी होगी और इसका फल बहुत उत्तम है ॥ २७ ॥

रव्यादिवारेषु युद्धे वर्ज्यान्कालार्द्धप्रहरार्द्धानाह ।

हालान्तकाभसख-यामदलैस्तु कालैः सूर्यादिवासरगतो युधि वर्जनीयैः । भासारमेतिदल यामदलानि भानुवारक्रमादपि नरैः स्वहितार्थमुज्झेत् ॥ २८ ॥

युधि संग्रामे हा ८-ला ३-त ६-का १-भ ४-स ७-ख २-यामदलैः । अष्टत्रिरसचन्द्रवेदशैलाश्विप्रमितैः यामदलैः यामार्द्धैः कालैः कालवेलाख्यैः । सूर्यादिवासरगतः वर्जनीयः । रविवासरे अष्टमोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, चन्द्रे तृतीयार्द्धप्रहरस्त्याज्यः,

भौमे षष्ठोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, बुधे प्रथमोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, गुरौ चतुर्थोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, शुक्रे सप्तमोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः, शनौ द्वितीयोऽर्द्धप्रहरस्त्याज्यः । कालवेलाख्योर्द्धप्रहरः युद्धे वर्जनीयः, भा४-सा ७-र २-मे ५-द८-ल ३-ति ६-यामदलानि भानुवारः क्रमान्नरःस्वहितार्थमुज्झेत् । रविवारे चतुर्थोऽर्द्धयामस्त्याज्यः । चन्द्रे सप्तमोर्द्धयामस्त्याज्यः, भौमे द्वितीयः, बुधे पंचमः, गुरौ अष्टमः, शुक्रे तृतीयः, शनौ षष्ठः । एतेऽर्द्धयामाः संग्रामे सदा त्याज्याः ॥ २८ ॥

सूर्य आदि वारोंमें क्रमसे ह ८-ल ३-त ६-क १-भ ४-म-७ ख २ यह अर्द्धयाम अर्थात् रविवारको आठवां यामार्द्ध, चंद्र को तीसरा, मंगलको छठा, बुधको प्रथम, गुरुको चौथा, शुक्रको सातवां और शनिको दूसरा अर्द्धयाम काल युद्धमें वर्जनीय है । और सूर्यादि वारोंमें क्रमसे भा ४-सा ७-र२-मे ५-द८-ल३- ति ६-इन प्रहरोंका अर्थात् सूर्यको चौथा, चंद्रको सातवां, भौमको दूसरा, बुधको पांचवां, गुरुको आठवां, शुक्रको तीसरा और शनिको छठा अर्द्धयाम काल अपने हितके निमित्त त्यागदेना उचित है ॥ २८ ॥

अर्द्धयामकालचक्रम् ।							उद्धयामकालचक्रम् ।						
हा ८	ल ३	त ६	रा १	भ ४	स ७	रा २	भा ४	सा ७	र २	मे ५	द ८	ल ३	ति ६
सू.	च.	म	बु.	बृ	शु	श	सू.	च	भं.	बु	बृ	शु	श

उदाहरण ।

यथा–विहारी लालजी मुनीम शुक्रको विलाऊ जांयँगे अतएव शुद्धविचारमें सातवां प्रहरार्द्ध और अपनी शुभकामनाके निमित्त उस दिन तीसरा प्रहरार्द्ध त्याग करके जाना चाहिये ॥ २८ ॥

वारेशमैन्द्र्यां विनिवेश्य पश्येत्प्रदक्षिणस्थानगतान् क्रमेण। यामार्द्धभोगाच्छनिरस्ति यस्यां यदा न यायात्ककुभं तदा ताम् ॥ २९ ॥

वारविशेषेऽर्द्धयामभोगः शन्याक्रान्तस्तत्तद्दिग्वर्जनमाह । वारेशं वारस्वामिनं सूर्यादिम् ऐन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि विनिवेश्य संस्थाप्य । अपरान् वासरान् क्रमेण प्रदक्षिणतः पश्येत् विचारयेत् । उक्तं च–यो वारो वर्तमानो भवति तं वासरं पूर्वस्यां दिशि संस्थाप्य अग्रिमवारम् अग्निकोणे, तदग्रिमं दक्षिणे, तदग्रिमं नैर्ऋत्ये, तदग्रिमं पश्चिमे, तदग्रिमं वायव्ये, तदग्रिममुत्तरे, तदग्रिममीशाने एवं वारान् पश्येत् । एवं न्यासे कृते सति यस्यां दिशि शनिर्भवति सा दिक् पूर्वतः कियती तत्संख्याके अर्द्धप्रहरे तां ककुभं दिशं वर्जयेत् । तत्र युद्धार्थं न गच्छेत् ॥२९॥

सूर्यादि वारोंमें जो वारेश हो उसको पूर्व दिशामें स्थापन करे और उसने आगेके वारेशोंको प्रदक्षिण क्रमसे और दिशाओंमें देखे तो जिस दिशामें शनि हो उस दिशामें पूर्वसे आदि लेकर उस दिशातक जितनी संख्या हो उस संख्या प्रमित अर्द्धप्रहरमें उस दिशामें नहीं जाना चाहिये ॥ २९ ॥

३७२६०

ककुभदिक्चक्रम् ।		
इ ८	सू पू १	च अ २
श उ ७	+	म द ३
शु वा ६	वृ प ५	बु नै ४

उदाहरण ।

यथा-चैत्र कृष्ण पंचमी बृहस्पति वारको श्रीमान् सेठ खेमराजजी दक्षिणयात्रा करेंगे। अतः उस दिन वारेश बृहस्पतिको पूर्वमें स्थापन करनेसे पूर्वमें बृहस्पति, अग्निमें शुक्र और दक्षिणमें शनि दीखता है और पूर्वसे दक्षिणतक दिशासंख्या ३ है । अतएव इस दिन तीसरे प्रहरार्द्धमें इस दिशामें नहीं जाना चाहिये ॥ २९ ॥

युद्धे वर्ज्या होरामाह ।

वारारम्भाद्घटयःखाघ्नो मात्ताश्च वारपाद्धोराः ।
रविसितबुधेन्दुशनिगुरुभौमानामरिखगस्यैं सा वर्ज्या३०

वारारम्भात्-वारस्य आरम्भात् वारप्रवृत्तिमारभ्य यावन्त्यो घटिकाः गच्छन्ति ताः खाघ्ना द्विगुणिताः कार्याः । पुनः माप्ताः पंचभक्ता वारपाद्धोरा भवन्ति । तत्र वारगणनायां क्रमः- रविः १- सितः २-बुधः ३- इन्दुः ४- शनिः ५ -गुरुः ६ भौमः ७ एतेषां होराः क्रमेण भवन्ति । सार्द्धद्वयघटिका-प्रमाणा सा होरा- अरेः खगस्य शत्रुग्रहस्य वर्ज्या यो योद्धुं गच्छति तस्य राशेः स्वामी यो ग्रहो भवति तस्य यः शत्रुग्रहो भवति तस्य होरां युद्धे वर्जयेत् ॥ ३० ॥

अतएव उपरोक्त गणनानुसार जिस दिन जिस समय सूर्य, चन्द्र, मंगलकी होरा हो उस समय युद्धमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३० ॥

वामांसेऽत्रं विरुद्धयामदलजः प्राग्भागके गूढजो
राहोः स्यात्तु कुचाधरे श्रुतिशिरोहस्ते प्रहारो रवेः।
चन्द्राद्दास्यभुजद्वये प्रहरणं शत्रुग्रहस्यापि तु
स्याद्धातः किल होरया हृदि मुखे खङ्गादियुद्धे ध्रुवम् ॥

विरुद्धयामगूढराहुरव्यादिषु युद्धाचरणे प्रहरस्थलान्याह,।-वज्र्यार्द्धप्रहरादौ एषु अङ्गेषु युद्धे घातो भवति। तदाह- विरुद्धयामदलजः विरुद्धं यामदलं यामार्द्धं तस्मिञ्जातः विरुद्धयामदलजः प्रहारः-योद्धुः वामांसे वामस्कन्धे स्यात्। गूढजः अर्धप्रहरजः प्राग्भागके शरीरपूर्वभागके स्यात्। राहोरर्धयामजः कुचाधरे कुचयोः अधरप्रदेशे च स्यात्। रवेः हता दिक् श्रुतिशिरोहस्ते घातं करोति। चन्द्राचन्द्रहता दिक् भुजद्वये घातं करोति। शत्रुग्रहस्य होरा हृदि मुखे च घातं करोति। खङ्गादियुद्धसमये ध्रुवं निश्चयेन ज्ञेयम् ॥ ३१ ॥

- युद्धके समय उपरोक्त यामार्द्ध, रवि, राहु आदिमें यदि यामार्द्ध विरुद्ध हो अर्थात् श्रेष्ठ न हो तो शरीरके वामस्कन्धमें, गूढ विरुद्ध हो तो शरीरके ऊर्ध्वभागमें,राहु विरुद्ध हो तो कुचोंपर, सूर्य विरुद्ध हो तो कान शिर और हाथोंपर, चन्द्रमा विरुद्ध हो तो सम्मुख तथा दोनों भुजाओंपर और होरा विरुद्ध हो अर्थात् शत्रुग्रहकी होरा हो तो मुख और हृदयपर खङ्गादिके युद्धमें निश्चय प्रहार होता है ॥३१॥

उदाहरण ।

उपरोक्त घातव्यवस्था दो प्रकारसे संघटित होती है। एक तो यह कि विरुद्ध यामादिमें आये हुए युद्धप्रवृत्त योद्धाके लिये दैवज्ञसे कोई पूछे कि इसके अङ्गमें कहां२ घात होगा तो वह पहले ही कह सकता है कि अमुक स्थानपर घात होगा। अर्थात् जैसे सन्मुख सूर्य में गया है तो कान, शिर और हाथोंपर प्रहार होगा। इत्यादि।

और दूसरे यह भी है कि, अपना शत्रु यदि विरुद्ध यामादिमें आया है और वह विरुद्धता अपनेको विदित है तो उक्त स्थानपर घात करनेसे शत्रु पर बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। यथा राहु विरुद्धमें आया है तो कुचोंपर घात करनेसे अधिक प्रभाव पड़ सकता है॥ इसके अतिरिक्त—मल्लयुद्धमें अनुकूल यामदलादिमें उपस्थित एक मल्लको, यदि दूसरे मल्लका विरुद्ध यामदलादिमें उपस्थित होना विदित है तो वह उक्त स्थानोंमें चोट लगानेसे विजयीहो,सकता है। यथा—चन्द्र विरुद्ध हो तो मुख और हृदयपर चोट मारनेसे दूसरा मल्ल शीघ्र पराजित हो सकताहै ॥ ३१ ॥

ग्रहस्थित्या प्रहारस्थलान्याह ।

लग्नाद्राशेश्च पुंसः करिपुकपिनयाघोद्भामातसंस्थाः
खेटो हन्युर्नवापि द्विपमथ सहसा मूर्ध्नि वक्त्रे सहृ-
त्के। वक्षाजे चोरुदेशे गुदे इति तदनु ग्रन्थि-
दो गण्डभागे वास्तुः सुतुः स कालैःस्वलसमनि-
शगैः कर्णकण्ठे शये च* ॥ ३२ ॥

---

* "लग्नाद्राशेश्च पुंसः शशि १ रवि १२ शिव ११ दिग् १० व्योमगो ९ द्वीप ८ वेद ४ स्थानेष्वर्थ ५ र्तु ६ संस्था रविशशिकुजवित्पूज्यशुक्रादिखेटाः। घातं कुर्युर्यथोक्ताः शिरसि च वदने हृत्प्रदेशे स मूर्ध्नि वक्षस्यूरुप्रदेशे गुद इति तदनु ग्रंथिदोर्गण्डभागे ॥ ३२ ॥" इतिपाठान्तरम् ॥

पुंसः पुरुषस्य जन्मलग्नात् जन्मराशेश्च क १-रिपु १२-कपि ११-नया १०-धो ९-द ८-भा ४-मा ५-त ६ एषु प्रथम, -द्वादशैकादश, -दशम, -नवाष्ट, -चतुर्थ, -पंचम, -षष्ठेषु स्थानेषु स्थिताः नचापि खेटाः रव्यादिग्रहाः मल्लयुद्धे एष्वंगेषु अवयवेषु द्विषं शत्रुं क्रमात् मूर्ध्नि मस्तक, वक्त्रे मुखे, सहृत्के सहृदयमुखे, वक्षोजे स्तने, ऊरुदेशे, गुदे, तदनु पश्चात् भ्रूश्च्योः, दोर्भुजे, गंडभागे कपोले शत्रुम् एतेषु शरीरस्थानेषु ग्रहाः घातं कुर्युः । उक्तं च-यो योद्धा युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्तस्य जन्मराशिस्थो भास्करो भवति स तस्य शत्रोः मस्तके घातं करोति । योद्धुर्जन्मराशितो द्वादशे जन्मलग्नतो द्वादशे वा चन्द्रः स्थितो भवति तदा तस्य शत्रोः मुखे घातं करोति । यदा योद्धुः एकादशे भौमः स्थितो भवति तदा तस्य शत्रोः हृदये घातं करोति । यदा योद्धुः दशमे बुधग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः वक्षःस्थले घातं करोति । यदा योद्धुर्नवमे गुरुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः ऊरुदेशे घातं करोति । यदा योद्धुरष्टमे भृगुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः गण्डभागे घातं करोति । यदा योद्धुश्चतुर्थे शनिग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः गुदे घातं करोति । यदा योद्धुः पंचमे राहुः स्थितो भवति तदा तस्य शत्रोः भुजायां घातं करोति । यदा योद्धुः षष्ठे केतुग्रहो भवति तदा तस्य शत्रोः कपोले घातं करोति । वास्तुः सूनुः, सकालः, ख २-ल ३-स ७-मनिशगः कर्ण-कण्ठे शये च । युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्य वास्तुः वास्तुस्वामी गृहारंभलग्नस्वामी गृहप्रवेशलग्नस्वामी वा ग्रहः खगतः द्वितीयस्थाने स्थितः

तदा तस्य शत्रोः कर्णे घातं करोति । युद्धं कर्तुं प्रवृत्तस्य सूनुः जेष्ठपुत्रोत्पत्तिलग्नेशस्तु ग्रहः छे-तृतीये स्थितस्तदा तस्य शत्रोः कंठे घातं करोति । योद्धुः सकालराशेः अष्टमस्वामी समः सप्तमस्तदा तस्य शत्रोः अनिशं निरन्तरं शये हस्तपृष्ठे च घातं करोति । इति ॥ ३२ ॥

युद्ध करनेवालेको जन्मलग्न वा जन्मराशिसे ' युद्धके समय ' सूर्यादिग्रह क्रमसे १-रिपु १२ काये ११-नय १०-ध ९-द ८-भा ४-मा ५-त ६-इन स्थानोंमें हों तो क्रमसे शत्रुके मस्तक, मुख, हृदय, वक्षःस्थल, ऊरु, गुदा, ग्रन्थि, भुज और कपोल इनमें घात करते हैं। अर्थात् अपने जन्मलग्न वा जन्मराशिसे सूर्य प्रथम हो तो शत्रुके मस्तकमें, चन्द्रमा बारहवें हो तो मुखपर, भौम ग्यारहवें हो तो हृदयमें बुध दशवें हो तो वक्षस्थल, (कुचस्थान) में, गुरु नौवें हो तो ऊरु (जंघा) में, शुक्र आठवें हो तो गुदापर, शनि चौथे हो तो ग्रन्थिभाग (गोड़ों) में राहु पांचवें हो तो भुजाओंपर और केतु छठे हो तो कपोल (गालोंपर) सहसा घात करता है।

और गेहारम्भ या गृहप्रवेश लग्नका स्वामी उस समय दूसरे हो तो कानोंपर, ज्येष्ठ पुत्रके जन्मलग्नका स्वामी तीसरे हो तो कंठोंपर और अपना अष्टमेश सातवें हो तो शत्रुके हाथ और पीठपर निरन्तर घात करता है ॥ ३२ ॥

उदाहरण ।

यथा लक्ष्मणसिंहका राशीश मंगल युद्धके समय कुंभराशिपर होनेसे लक्ष्मणसिंहको ग्यारहवां है अतएव यह शत्रुके हृदयमें घात करता है। वास्तु-गृहप्रवेशलग्न वृषका स्वामी शुक्र युद्धके समय वृषका होनेसे लक्ष्मणसिंहको दूसरा है अतएव यह शत्रुके कानोंपर घात करता है। लक्ष्मणसिंहके ज्येष्ठ पुत्रका जन्मलग्नेश सूर्य युद्धके समय मिथुनका होनेसे

लक्ष्मणसिंहको तीसरा है अतएव यह शत्रुके कंठोंमें घात करता है । और अष्टमेश युद्धके समय तुलाराशिका होनेसे लक्ष्मणसिंह को सातवां है अतएव यह शत्रुके पाँउपर निरन्तर घात करता है ॥ ३२ ॥

जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा ग्रहस्थितिवशाच्छरीरघातचक्रम् ।											
१ सू	१२ च	११ मे	१० बु	९ गु	८ शु	४ श	५ रा	६ के	२ बा	३ पु	७ [illegible]
मूर्ध्नि	मुखे	मुखहृदि	स्तनयोः	कटदेशे	गुदे	अघो	भुजयो	गण्डयोः	कर्णयो.	कण्ठे	हस्तयो

इति समरसारे गुढयामाख्ययोगिन्यादिसहप्रहारलक्षण-
कथनप्रकरणम् ।

युद्धेऽहिचक्रविरुद्धत्याज्यनक्षत्राण्याह ।

आर्द्रादिभिस्त्रिनाड्यामहिचक्रे यद्येकनाड्यां स्युः ।
नामार्कचन्द्रभानि प्रधने तदहस्त्यजेद्यत्नात् ॥ ३३ ॥

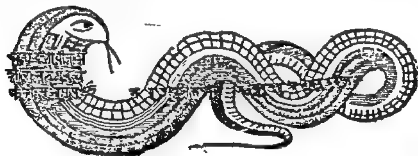
आर्द्रादिभिरिति । यस्मिन् दिने आर्द्रादिनक्षत्रैर्नाडीत्रयनिर्मिताहिचक्रे एकस्यां नाड्यां जन्मभं नामभं वा सूर्याधिष्ठितं भं चन्द्राधिष्ठितं भं च त्रीण्यपि स्युस्तदहस्तद्दिनं प्रधने युद्धे यत्नात्त्यजेत् । यत्रार्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषक्, भरणी, कृत्तिका एतानि नक्षत्राणि एकनाडीस्थानि ९, पुनर्वसु–मघा–हस्त–विशाखा मूल–श्रवण-पूर्वाभाद्रपदा–अश्विनी-रोहिणीति द्वितीयनाडीस्थभानि ९, शेषाणि पुष्य-श्लेषा–चित्रा-स्वाती-पूर्वाषाढोत्तराषाढोत्तराभाद्रपदा-रेवती-मृगशीर्षाणि ९ भानि तृतीयनाडीस्थानि ।

अत्र-एकनाड्यां नामार्कचन्द्रभानि यस्मिन्दिने त्रीण्यपि एकस्यां नाड्यां स्युस्तद्दिने युद्ध वर्ज्यमित्यर्थः ॥ ३३ ॥

आर्द्रा आदि नक्षत्रोंसे नीचे लिखे अनुसार तीन नाडीका अहि (सर्प) चक्र बनावे । उस चक्रमें यदि एकही नाडीमें नामनक्षत्र यह सूर्यनक्षत्र और चन्द्रनक्षत्र यह तीनों जिस दिन हों तो वह दिन युद्ध-यात्रामें यत्नसे त्याग देना चाहिये + ॥ ३३ ॥

उदाहरण ।

यथा—चैत्र शुक्ल सप्तमी बुधवार मृगशिर नक्षत्रके दिन ' राजसिंहका जन्मनक्षत्र चित्रा, और सूर्य नक्षत्र रेवती, एवं चंद्रनक्षत्र मृगशिर है ' तो यह तीनों नक्षत्रही अंतिम (तीसरी) एक नाडीमें स्थित है अतएव राजसिंहको युद्धयात्राके निमित्त यह दिन त्यागदेना चाहिये ॥ ३३ ॥



वारदिक्शूलमाह ।

शनिचन्द्रौ गुरुः सूर्यसितौ कुजबुधौ त्यजेत् ।
चतुर्दिक्षु निषिद्धार्द्धयामे शूलं विशेषतः ॥३४॥

शनिचन्द्रौ वारौ पूर्वस्यां त्यजेत् । गुरु दक्षिणस्यांत्यजेत् । रविभृगुवारौ पश्चिमायां त्यजेत् । भौमबुधवारौ उत्तरस्यां त्यजेत् । चतुर्दिक्षु एवं क्रमेण ज्ञातव्यम् । निषिद्धार्द्धयामे यस्मिन् वासरे योऽर्द्धयामो निषिद्धः भवति स त्याज्यो भवति

+ यह सर्पाकार एकनाडीचक्र युद्धयात्राके सिवाय अन्यत्र भी देखा जाता है ।

तस्मिन्नर्द्धयामे वारशूले च गमनं विशेषण वर्जयेत् । उक्तं च–शनिवासरे षष्ठे यामार्द्धे, चन्द्रवासरे सप्तमे यामार्द्धे पूर्वस्यां दिशि न गच्छेत् । रविवासरे चतुर्थेऽर्द्धयामे, शुक्रवासरेतृतीय-यामार्द्धे पश्चिमां दिशं न गच्छेत् । गुरुवासरे अष्टमयामार्द्धे दक्षिणां दिशं न गच्छेत् । भौमवासरे द्वितीययामार्द्धे, बुधवासरे पंचमयामार्द्धे उत्तरां दिशं न गच्छेत् । एतेऽर्द्धप्रहराः विशेषतो वर्ज्याः, सामान्यतस्तु तद्दिनानि सकलान्येव वर्ज्यानि ॥३४॥

शनिवार व सोमवारको पूर्वमें, गुरुवारको दक्षिणमें, रविवार व शुक्रवारको पश्चिममें और मंगलवार व बुधवारको उत्तरमें नहीं जाना चाहिये और जिन वारोंके जो निषेध अर्द्धयाम हों उनमें दिक्शूलको विशेषकर त्याग देना चाहिये । तथा–शनिको छठे और चन्द्रको सातवें यामार्द्धमें पूर्वमें नहीं जाना चाहिये । गुरुको आठवें यामार्द्धमें दक्षिणमें नहीं जाना चाहिये । सूर्यको चौथे, शुक्रको तीसरे यामार्द्धमें पश्चिममें नहीं जाना चाहिये । और मंगलको दूसरे तथा बुधको पांचवें यामार्द्धमें उत्तरमें नहीं जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

उदाहरण ।

गणेशप्रसाद मिश्र गुरुवारको दक्षिणमें जाना चाहते हैं किन्तु उस दिन दक्षिणमें दिक्शूल रहनेसे वह दिन सम्पूर्ण निषिद्ध है । दिक्

दिक्शूलचक्रम् ।

	श. च. पू. ६–७	
उत्तर बु. भौ. ५–२	+ + + + +	दक्षिण गुरु ८
	सू. शु. प. ४–३	

शूलमें बहुधा लोग वारप्रवृत्तिमें दोष मानकर सूर्योदयसे घड़ी दो घड़ी आगे पीछे भेज देते हैं। किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये। दिक्शूला-दिमें सूर्योदयसे ही वारारंभ मानना चाहिये। यदि गणेश प्रसादको गुरुवारके दिनही जाना आवश्यक हो तो आठवां अर्द्धयाम त्यागकर फिर जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

नवग्रहाणां स्वस्वभुज्यमाननक्षत्रेऽश्विन्यादि-
सप्तविंशतिनक्षत्राणामवान्तरभोगमाह ।

धीघ्नौ भभुक्तनाड्यो नखाप्तिपरिशेषयोगतःसदपि ।
तत्काले शशिभमिति रव्याद्यां गतिनुतिलवस्तु
घटिकेहं ॥ ३५ ॥

भभुक्तनाड्यो नक्षत्रस्य भुक्तघटिकाः धीघ्ना नवगुणिताः कार्याः ततो नखाप्ता विंशतिभक्ताः कार्या। यल्लभ्यते तानि गतनक्षत्राणि भवन्ति। तन्नक्षत्रमारभ्य यन्नक्षत्रं दिने भवति। यत्परिशिष्टं भवति तत्तात्कालिकनक्षत्रं ज्ञातव्यम्। एवंतात्कालिक-शशिभमिति-तत्कालिकचन्द्रनक्षत्रं प्रमाणं भानोः सर्वर्क्षघटिकाः सप्तविंशतिभिर्भाजिताः। लब्धे सति नक्षत्रघटिका भाजिता गतं भवेत्। खगानां सर्वघटिकाः पूर्वोक्तसहिता भवन्ति। गतिनुतिलवः नक्षत्रगतिः। यावत्सूर्यभौमादीनां ग्रहाणां याः सर्वर्क्षघटिका भवन्ति घट्यात्मकं प्रमाणं भवति-तासां षट्त्रिंशघटिका प्रमाणं भवति। एवं याः घटिका नक्षत्रस्य गता भवन्ति ताः घटिकाप्रमाणेन भाजयेत्,-या गतघटिकाः

भवन्ति, ता धीघ्रा नवगुणिता नखाप्ताः लब्धं गतनक्षत्राणि भवन्ति, शेषं वर्तमानं भवति । एवं सूर्यचन्द्रौ विचारणीयौ कस्मिन्नक्षत्रे तात्कालिकौ भवेतामित्यर्थः । सूर्यादिभोग्यनक्षत्राणां तद्भोग्यफलः षष्ट्यंशः ॥ ३५ ॥

जिस किसी नक्षत्रपर कोईभी ग्रह जितने समयतक स्थित होता है उतने ही समयम उस एकही नक्षत्रके बीचमें सत्ताइसो नक्षत्रोंके अन्तरभोग होते हे । नक्षत्रपर जिस समय ग्रह स्थित हो उस समय से लेकर अपने इष्टके समयतक जितना व्यतीत हुआ हो वह भयात होता है । और आरम्भसे अन्ततक जितना नक्षत्र हो वह भभोग होता है । एवं भभोगमें ६० का भाग देनेसे जो लब्धि हो वह षष्ट्यंश होता हे ।

भभोग चाहे घट्यात्मक (पूरा ६० घटी वा न्यूनाधिक) हो, चाहे दिनात्मक हो और चाहे मासात्मक हो-उ । सम्पूर्ण मानको ६० घटी और उसके षष्ट्यंशको एक घटी मानकर उस षष्ट्यंशका भयातमें भाग देना चाहिये । स्मरण रखनेकी बात है कि, भयात और षष्ट्यंश दोनोंको विपल करके भाग देना चाहिये । भाग देनेसे जो लब्धि हो वह भभुक्त नाडी होती है । उन भभुक्त नाडियोंको नौसे गुणाकर बीसका भाग देनसे जो लब्धि हो वह ग्रहके वर्तमान नक्षत्रसे आरम्भ कर गणना करनेसे गत नक्षत्र होते है । और जो शेष हो वह वर्तमान नक्षत्र होते है । तात्कालिक चन्द्र नक्षत्रसे और इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहोंके नक्षत्रसे प्रत्येक नक्षत्रमें सब नक्षत्रोंके अन्तरभोग होते है ॥ ३५ ॥

उदाहरण ।

संवत् १९६७ शके १८३२ कार्तिक कृष्णाष्टमी मङ्गलवारको ४९ घटी २१ पलके इष्टपर चन्द्रसूर्यके नक्षत्रान्तरभोग जानते हैं । अतः उ,

दिन पुनर्वसु २। ५६ और दूसरे दिन पुष्य १ । ७ है। अतएव चन्द्र-नक्षत्र पुष्यमें अन्तरभोग जाननेके निमित्त उपरोक्त इष्टपर गणितकर-नेसे ४६ घटी ३९ पल भयात । ५८ घटी ११ पल भभोग और ० घटी ५८ पल ११ विपल पष्टयंश आता है। इस षष्ठ्यंश ५८।११ के विपलपिण्ड ३४९१ का भयात ४६।२९ के विपलपिण्ड १६७१०० में भाग दिया तो ४७।५२ भभुक्तनाड़ी प्राप्त हुई । इन ४७।५२ भभुक्त नाड़ियोंको नौसे गुणा किया तो ४३०।४८ हुए। इनमें २० का भाग दिया तो २१ लब्ध हुए और १०।४८ शेष रहे। यहां वर्तमान पुष्य-नक्षत्र है अतएव पुष्यसे लेकर अश्विनीतक २१ अन्तरभोगहो चुके और वर्तमान भरणी है।

इसी प्रकार सूर्यनक्षत्रका अन्तरभोग देखना है तो कार्तिक कृष्ण ५ रविवारको ४९।८ के समय स्वाती पर सूर्य आया है और कार्तिक शुक्ल ४ रविवारको ६।२२ पर्यन्त रहा है। अतएव इस सम्पूर्ण काल को षष्ठ्यंशात्मक मानके गणित करनेसे सूर्यका—२ दिन ० घटी १३ पल भयात। १३ दिन १७ घटी २४ पल भभोग। और १३ घटी १७ पल १९ विपल षष्ठ्यंश आता है। इस १३।१७।२९ षष्ठ्यंशके विपलपिण्ड ४७८४४ का—भयात २।०।१३ के विपलपिण्ड ४३२७-८० में भाग दिया तो ९।२ भभुक्त नाडी प्राप्त हुई। इन ९ । २ भभुक्त नाडियोंको नौसे गुणा किया तो ८१।२७ हुए—इनमें २० का भाग दिया तो ४ लब्ध और १।२७ शेष रहे। यहां सूर्यका वर्तमान नक्षत्र स्वाती है। अतः स्वातीसे ज्येष्ठातक ४ अन्तरभोग हो चुके और वर्तमान मूल है। स्मरण रखनेकी बात है कि, जिस ग्रहका जो वर्तमान नक्षत्र हो उसीसे गिनना चाहिये अश्विनीसे कदापि नहीं गिनना चाहिये बस इसी प्रकार भौमादि सब ग्रहोंके होसकते हैं । यहां केवल सूर्यचन्द्रका ही प्रयोजन है। इसलिये और ग्रहोंके उदा-हरण नहीं दिये हैं ॥ ३९ ॥

चन्द्राधिष्ठितपुष्यनक्षत्रस्यांतभोगचक्रम् ।

का कृ ८ पु ६ १।५६ अन्तर	[illegible] अं	[illegible] म	४ पू	५ उ	६ ह	७ चि	८ स्वा	वि	१० अ	११ ये	१२ मू	१३ पू	१४ उ	१५ श्र	१६ ध	१७ श	१८ पू	१९ उ	२० रे	२१ अ	भ	कृ	रो	मृ	[illegible]	पु

सूर्याधिष्ठितस्वातिनक्षत्रस्यांतभोगचक्रम ।

१ स्वा	२ वि	३ अनु	४ ज्ये	मू	पू	उ	श्र	ध	श	पू	उ	रे	अ	भ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	[illegible]	म	पू	उ	ह	चि

राहुकालानलचक्रमाह ।

पक्षो जीवो वलितगतिना राहुणेतोडुलोका गम्यो
ऽन्तस्तद्युतमुडु शयं कर्तरीग्रस्तसंज्ञे । स्थायीनो
याय्युडुपतिरिमौ जीवगौ तज्जयायै प्रेताज्जग्धं
किमपि तु वरं कर्तरी जग्धतश्च ॥ २६ ॥

वलिता विपरीता वक्रा गतिर्यस्य तादृशेन राहुणा इता भुक्ता ये उडूनां नक्षत्राणां लोकास्त्रयोदश जीवपक्षः । राहुभुक्तत्रयोदशभानि जीवपक्षसंज्ञानि स्युरित्यर्थः । गम्यस्तु त्रयोदशनक्षत्रात्मकः पक्षोऽन्तो मृतसंज्ञकः । तेन राहुणा युतमुडु नक्षत्रं कर्तरीसंज्ञम्, शयं पंचदशं तु ग्रस्तसंज्ञं स्यात् । स्थायी इनः सूर्यो ज्ञेयः । यायी उडुपतिश्चन्द्रो ज्ञेयः । इमौ रवीन्दू जीवपक्षे गतौ तयोः स्थायियायिनोः क्रमाज्जयाय भवतः । धीप्रभेत्यादि पूर्वश्लोकोक्तरीत्या नीतयोस्तन्नक्षत्रस्थितरवीन्द्वोस्तु तत्काले जयपराजयज्ञानम् । प्रेतान्मृतनक्षत्रात् जग्धं ग्रस्तं पंचदशं नक्षत्रं किञ्चिद्वरं श्रेष्ठम् । जग्धाद्ग्रस्तात्कर्तरीसंज्ञं राहुभुज्यमानं भं श्रेष्ठमित्यर्थः । इति राहुकालानलः ॥२६॥

राहुके वर्तमान नक्षत्रको छोड़कर विलोम गणना करके तेरह नक्षत्र जीवपक्षके, तथा क्रमगणनासे आगेके तेरह नक्षत्र मृतपक्षके और राहुयुक्त नक्षत्र कर्तरी तथा उससे पन्द्रहवां नक्षत्र ग्रस्तसंज्ञक होता है । इनमेंसे जीवपक्षके नक्षत्रोंमें यदि सूर्य हो तो स्थायी और चन्द्र हो तो यायीका जय होता है । शेष मृत, ग्रस्त, कर्तरीमें—मृतसे ग्रस्त अच्छा होता है और ग्रस्तसे कर्तरी अच्छा होताहै ॥ २६ ॥

उदाहरण ।

यथा-संवत् १९६८ श्रावण शुक्ल एकादशी शनिवारको अश्विनी पर राहु, जेष्ठापर चन्द्रमा और श्लेषापर सूर्य है । अतः अश्विनी नक्षत्र-पर राहु होनेसे अश्विनी कर्तरीसंज्ञक और भरणी, कृत्तिका, रोहिणी मृगशिर, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा यह १३ भुक्त नक्षत्र जीवपक्षके हैं । एवं रेवती, उत्तराभाद्रपद, पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, धनिष्ठा, श्रवण, अभि-जित, उत्तराषाढ, पूर्वाषाढ, मूल, ज्येष्ठ, अनुराधा और विशाखा यह १३ भोग्यनक्षत्र मृतपक्षके हैं । तथा स्वाती ग्रस्तसंज्ञक है ॥

यहाँ इस दिन चन्द्रमा जेष्ठानक्षत्र पर होनेसे मृतपक्षका है । और सूर्य श्लेषा नक्षत्रपर होनेसे जीवपक्षका है, अतः स्थायीका विजय आता है ।

यदि इसी दिन यायीका विजय देखना हो तो " धीमाभभुक्त०" के अनुसार इस दिन १५।२२ के इष्टपर जेष्ठानक्षत्रमें १७ अन्तरभोग व्यतीत हो जानेसे जेष्ठासे पुनर्वसु तक १७ अन्तरभोग हो चुके और वर्तमान पुष्यका भोग है, अतएव पुष्य जीवपक्षमें आजानेसे १५।२२ के समय यायीको विजय प्राप्त हो सकता है ॥ ३६ ॥

अश्विनीकर्तरी । राहुकालानलचक्रम् ।
ग्रस्तं स्वाती

भ	कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले	म	पू	उ	ह	चि	भुक्त
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	म.
रे	उ	पू	श	ध	श्र	अ	उ	पू	मू	जे	अनु	वि	भो
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	स

नामनक्षत्रज्ञानायावकहडचक्रमाह ।

शुण्ठीकोष्ठेषु तिर्यक् त्ववकहडलिखाधःस्थिताली-
ष्विंदाद्यैस्तान्युक्तैस्तैः स्वरैश्च क्रमत इह कुयुग्घं
ङछौ मध्यकोष्ठे । घैघैरूर्ध्वाधरालीष्वनलभत
इह्वासापभेणे भेपादा एवं चान्येषु दद्यान्मटपरत-
पुयुकैपणठा मध्यकोष्ठे ॥ ३७ ॥ पितृभत इति
भानि चाद्विदैवं नयभजखाश्वे तथा भुयुग्धफो-
ढैः । हरिभैमवाधिरत्रमेत्रतः स्युगसदचला वसुभा-
हुयुकैथझञैः ॥ ३८ ॥

शुंठीकोष्ठेषु पंचविंशतिकोष्ठेषु तिर्यङ्मार्गेण अवकहडइति पंचवर्णान् लिख । तदधःस्थितपंक्तिषु उक्तैः कथितैः तदाद्यैः स्वरैः तान्वर्णान्क्रमतः संयोज्य लिख । इह अत्र चक्रे मध्यकोष्ठे कुयुक् घङछा लेख्याः । इकाराद्यैः स्वरैस्तेषां वर्णानां योगः कथं कर्तव्यः ? तत्राह-'अ व क ह ड' एतेषु इकार संयोगेन 'इ वि कि हि डि' भवेत् । एवम् उकारसंयोगेन 'उ वु कु हु डु' भवेत् । एवमेकारसंयोगेन 'ए वे के हे डे' भवेत् । एवमोकारसंयोगेन 'ओ वो को हो डो' भवेत् । एवं पंचविं-शतिकोष्ठेषु वर्णाः लेख्याः यत्र मध्यकोष्ठेषु कुकारः तत्र घङछा लेख्याः । घैघैश्चतुभिश्चतुर्भिर्वर्णैः अनलभतः आसार्प

श्लेषान्तं भपादा नक्षत्रचरणाः भवन्ति। यथा-अ इ उ ए कृत्ति
कापादाः,ओ वा वि वु रोहिणीपादाः,वे वो का की मृगशिरः-
पादाः, कु घ ङ छ आर्द्रापादाः, के को ह ही पुनर्वसुपादाः,हु
हे हो डा पुष्यपादाः, डि डु डे डो श्लेषापादाः। एवमन्येषामपि।
एवं च अनेन प्रकारेण अन्येषु पंचविंशतिकोष्ठेषु मटपरतःवर्णा
लेख्याः । पुनः इकराद्यैः स्वरैर्युक्ताः कार्याः । अथ तत्राह-
मि टि पि रि ति, मु टु पु रु तु, मे टे पे रे ते, मो टो पो रो
तो । एवं क्रमेण वर्णा लेख्याः । यत्र मध्यकोष्ठे पुकारःतत्र
षणठा लेख्याः । पितृभतः मघामारभ्य आग्निदैवं विशाखांतं
चतुर्भिर्वर्णैः नक्षत्राणि भवन्ति । तथा च नयभजखा लेख्याः ।
पूर्वोक्तक्रमेण इकाराद्यैः स्वरैर्युक्ता वर्णा लेख्याः। कथं? तत्राह-
नि यि भि जि खि, नु यु भु जु खु, ने ये भे जे खे, नो यो
भो जो खो । यत्र कोष्ठेषु भुकारः तत्र धफढा लेख्याः ।मैत्र-
मनुराधामारभ्य हरिभमवधिः श्रवणपर्यन्तं चतुर्भिश्चतुर्भिर्वर्णैः
नक्षत्राणि भवन्ति । पुनः गसदचलास्तथैवलेख्याः । पुनरिका
राद्यैः स्वरैः संयुक्ता लेख्याः । कथं तत्राह-गि सि दि चि लि,
गु सु दु चु लु, गे से दे चे ले, गो सो दो चो लो । एवंयत्र
दुकारः तत्र थझञ वर्णा लेख्याः । एवं वसुभाद्वनिष्ठातः भरणी
पर्यन्तं नक्षत्राणि भवन्ति ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

पांच पांच कोठोंकी पांच पंक्ति बनानेसे पच्चीस कोष्ठक बन जाते हैं। उन (१) पच्चीस कोठोंका प्रथम पंक्तिमें अ-व-क-ह-ड लिखें। और उसके नीचेकी पंक्तियोंमें अ के नीचे इ-उ-ए-ओ-लिखकर व-क ह ड को इ आदि स्वरोंसे युक्त करके लिखें। और इनके मध्य-कोष्ठमें जहां " कु " लिखा है उसमें 'घङछ' लिखेंतो ऐसा लिखनेसे उर्ध्वाधः पंक्तियोंमें कृत्तिकासे आदि लेकर श्लेषापर्यन्त चार चार चरण गत वर्ण हो जाते हैं (२) वैसे ही फिर पच्चीस कोठोंमें म-ट-प-र-त-लिखकर उनके नीचेकी पंक्तियोंमें इनको इ आदि स्वरोंसे युक्त कर लिखें। और इनके बीचके ' पु ' युक्त कोष्ठमें ' षणठ ' लिखें तो मघासे लेकर विशाखा तक उसीप्रकार चरणगत वर्ण होते हैं। (३) फिर ऐसे ही पच्चीस कोठोंमें न-य-भ-ज-ख लिखकर इनके नीचेकी पंक्तियोंमें इनको इ आदि स्वरोंसे युक्त लिखें और ' भु ' युक्त मध्य कोष्ठमें ' धफढ ' लिखे तो अनुराधासे लेकर श्रवण तक चरणगत वर्ण होते हैं। (४) और फिर ऐसे ही पच्चीस कोठोंमें ग-स-द-च-ल-लिखके नीचेकी पंक्तियोंमें इ आदि स्वरोंसे युक्त लिखकर ' दु ' युक्त मध्य कोष्ठमें ' थझञ ' लिखे तो धनिष्ठासे भरणी तक चरणगत वर्ण होते हैं। (यह सब नाम और नक्षत्र ज्ञानके उपयोगी हैं) ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अवकहडचक्रम् ।

अ १	व २	क ३	ह ३	ड ४ पु	म १	ट २	प ३	र ३	त ४ स्वा
इ २	वि ३	कि ४ मृ	हि ४ पु	डि १	मि २	टि ३	पि ४	रि ४ चि	ति १
उ ३	वु ४ रो.	कु घ ङ छ आ १-४	हु १	डु २	मु ३	टु ४ पू	पु ष ण ठ ह १-४	रु १	तु २
ए ४ कृ.	वे १	के १	हे २	डे ३	मे ४ म	टे १	पे १	रे २	ते ३
ओ १	वो २	को २	हो ३	डो ४ श्ले	मो १	टो २	पो २	रो ३	तो ४ वि

न १	य २	भ ३	ज ३	ख ४ ऽभि	ग १	स २	द १	च ३	ल ४ ऽश्वि
नि २	यि ३	भि ४ मू	जि ४ उ	खि	गि २	सि ३	दि ४ पू	चि ४ रे	लि १
नु ३	यु ४ ज्ये	भु धफढ १-४ पू	जु १	खु २	गु ३	सु ४ श	दु थ झ ञ उ १-४	चु १	लु २
ने ४ ऽनु	ये १	भे १	जे २	खे ३	गे ४ ध	से १	दे १	चे २	ले ३
नो १	यो २	भो २	जो ३	खो ४ श्र	गो १	सो २	दो २	चो ३	लो ४ भ

उदाहरण ।

इस चक्रसे नाम और नक्षत्रका सम्यक् ज्ञान होनेके निमित्त सब अक्षरोंके पास एक, दो, तीन चार संख्या लगाकर चार चार संख्याके अन्तरपर नक्षत्रका नाम रख दिया है, इससे नाम नक्षत्र और राशि देखनेमें सुगमता होती है। यथा–प्रथम कोष्ठमें अ को १ संख्या है तो उसके नीचे २ । ३ । ४ । होनेसे अ इ उ ए कृत्तिका नक्षत्र होता है। इसी प्रकार नाम देखना हो तो अच्युत, ईश्वर, ऊर्ध्वबाहु, एकव्रती, नाम कृत्तिकाके होते हैं। ऐसे ही और भी देखे जाते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

इति समरसारे नामनक्षत्रज्ञानादिप्रकरणम् ।

हंसचारोक्तिपूर्वकं स्वरबलज्ञानमाह ।

नागैर्नीचै र्निधिज्ञैश्चयनशुकमितैः श्वासपर्य्यायकैर्वीर्यभ्रं वातोऽनलोम्बुक्षितिरपृथगुपयन्ति गधोप्युर्जुत्वे । व्यत्यासाच्चावनीतो हृदयकमलजे पत्रे एकत्रेतेनैं श्वासो नानाधिसंख्योननरसंकमलेऽहन्निशो स्त्रिभ्रमोऽत्र ॥ ३९ ॥

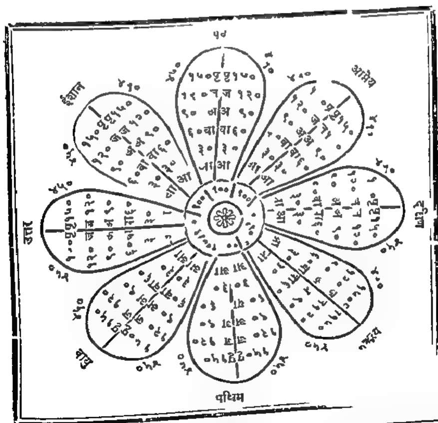
हृदयकमले अष्टदले पूर्वदिशातः एकैकस्मिन्दले पत्रे एकवारर्द्धे मूलमारभ्य नागैः त्रिंशद्भिः श्वासपर्यायैः अभ्रम् आकाशतत्त्वं चलति । कथं वाति अपृथक् वाति संलग्नमेव संधौ वाति । पुनर्नीचैः ६० षष्टिसंख्यैः श्वासपर्यायैः उपरि ऊर्द्ध्वं वातो वायुतत्त्वं वाति चलति । निधि ९० मितैर्नवतिपरिमितैः श्वासपर्यायैः

अन्तरा तिर्यक् अनलः अग्नितत्त्वं वाति चलति । पुनः ज्ञाश्रयः १२० विंशत्यधिकशतपरिमितैः श्वासपर्यायैःअधोभागे अंबुतत्त्वं जलतत्त्वं वाति चलति । पुनः नशुक १५० मितैः श्वाशपर्यायैः ऋजुत्वे शुद्धमार्गे सति क्षितिः पृथ्वीतत्त्वं वाति चलति । पुनः इतरार्द्धे पत्राग्रादारभ्य अवनीतः मध्यात् पृथ्वीतत्त्वात् व्यत्यासाद्वैपरीत्यात् पृथ्वीतत्त्वम् ऋजुमार्गेण नशुक १५० मितैः श्वासपर्यायैः वाति चलति । पुनस्तदुपरि विंशत्यधिकशतमितैः श्वासपर्यायैः अधोभागे अम्बुतत्त्वं वाति चलति । पुनर्नवतिमितैः श्वासपर्यायैः अन्तरा तिर्यक् अग्नितत्त्वं चलति । पुनः षष्टिसंख्याकैः श्वासपर्यायैः उपरि ऊर्द्ध्वं वायुतत्त्वं चलति । हृदयकमलजे एकत्रपत्रे एवं क्रमेण स्यात् । प्रथमं कमलस्य पूर्वभागस्थे पत्रे वायुर्वाति । पुनः अग्निकोणस्थे पत्रे वायुर्वाति, पुनः दक्षिणस्थपत्रे वायुर्वाति । पुनः निर्ऋतिस्थपत्रे वायुर्वाति, पुनः पश्चिमस्थे, पुनः वायव्यस्थे, पुनरुत्तरस्थे, पुनरीशानस्थे पत्रे वायुर्वाति । एवं क्रमेण तत्त्वं चलति । तत्र तत्त्वानां चलने विशेषमाह । आकाशतत्त्वमनंगुलं चलति । चतुरंगुलपर्यंतं वायुतत्त्वं चलति । अष्टांगुलपर्यंत वह्नितत्त्वं चलति । षोडशांगुलपर्यंतं जलतत्त्वं चलति । द्वादशांगुलपर्यंतं पृथ्वीतत्त्वं चलति । तेन वायचलनेन नानाधि ९०० संख्याः श्वासपर्यायाः एक-

स्मिन्पत्रे भवन्ति । संपूर्णम्—अष्टदले कमले नवरसिसंख्याः ७२०० द्विसप्ततिशतसंख्याः श्वासपर्यायाः भवन्ति । एकैकस्मिन्पत्रे सार्द्धद्वयघटिकायाः तत्त्वानि चलंति । एवमष्टसु पत्रेषु विंशतिघटिका भवन्ति । एवमहर्निशोः दिनरात्र्योः त्रिर्भ्रमो भवति । विंशतिघटिकाभिः त्रिवारं भ्रमो ज्ञेयः । एवं सम्पूर्णमहोरात्रे त्रिवारभ्रमेण २१६०० निःश्वाससंख्यात्मिका षष्टिघटिका ज्ञातव्याः । "एकविंशत्सहस्राणि षट्शतानि तथोपरि। हंसहंसेति हंसेति जीवो जपति नित्यशः ॥" इति ॥ ३९ ॥

हृदयमें आठपत्रोंका अष्टदल कमल है । उस कमलके पूर्वादि दिशाक्रमसे प्रथम पत्रमें ३० श्वास चलें इतनी देरतक नासारंध्रसे लगा हुआ आकाशतत्त्व चलता है । फिर ६० श्वास चलें इतनी देरतक ऊपरको तर्फ होकर वायुतत्त्व चलता है । फिर ९० श्वास चलें इतनी देरतक तिर्छा होकर अग्नितत्त्व चलता है । फिर १२० श्वास चले इतनी देरतक अधोरूपसे जलतत्त्व चलता है । फिर १५० श्वास चलें इतनी देरतक सरल मार्गसे पृथ्वीतत्त्व चलता है । यह पत्रके एक तरफमें मूलसे चलकर ऊपरको गये हैं । और ऊपरसे चलकर पत्रके दूसरी तर्फमें, इसीप्रकार पृथ्वीतत्त्वसे विपरीत होकर मूलतक चलते हैं । अर्थात् १५० तक पृथ्वी, १२० तक जल, ९० तक अग्नि, ६० तक वायु और ३० तक आकाश तत्त्व चलता है । (इस संचालनके

विषयमें अधो लिखित चक्र और टिप्पणी + देखना बहुत आवश्यक है)। इस भांति यह पांचों तत्त्व आठों पत्रोंपर चलते है । इनमें एक पत्रकी श्वाससंख्या ९०० अर्थात् अढाई घडी और आठों पत्रोंकी श्वाससंख्या ७२०० अर्थात् बीस घडी होती है । और इनके तीन वार भ्रमण करनेसे अहर्निश (दिनरात्रि) की श्वाससंख्या २१६०० अर्थात् ६० घडी होती हैं ॥ ३९ ॥



+ पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चाप ऊर्ध्वं वहति चानलः । तिर्यग्वायुप्रवाहश्च नभोवहति संक्रमे ॥ १ ॥ वामे वा दक्षिणे ॥ २ ॥ ... चतुरङ्गुलम् ॥ ... ोर्मिका । षोडशाङ्गुलमापः सुस्तेजश्च चतुरङ्गुलम् ॥ २ ॥

प्रागादिदिक्पत्रगामिनि प्राणवायौ

यादृक् चित्तवृत्तिस्तामाह

इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वसने रणाय भोक्तुं रुपे ऽथ विषयाय मुदे गमाय । चेतोभवेत्कम्पयितुं च नृपास्पदाय पत्रद्वयान्तरचरे तु मुदं परस्म ॥ ४० ॥

इन्द्रादिदिग्दलचरे श्वसने पूर्वादिदिक्प्रगते वायौ एवं फलं भवेत् । पूर्वपत्रश्वसने वायौ चरति सति रणाय मनो भवेत् ।

—द्वादशाङ्गुलदीर्घः स्याद्वायुर्व्योमाङ्गुलेन हि ॥ ३ ॥ पृथ्वी पीता सित वारि रक्तवर्णो धनञ्जयः । मारुतो नीलजीमूत आकाशो वर्णपञ्चकः ॥ ४ ॥ पृथिव्यादित्रितत्त्वेन दिनमासाब्दकैः फलम् । शोभनं च तथा [illegible] व्योममारुतवह्निभिः ॥ ५ ॥ पृथ्वीजले शुभे तत्त्वे तेजो मिश्रफलोदयम् । हानिमृत्युकरौ पुंसामशुभौ हि व्योममारुतौ ॥ ६ ॥ पार्थिवे सततं युद्धं सन्धिर्भवति वारुणे । विजयो वह्नितत्त्वेन वायौ भंगो मृतिस्तु खे ॥ ७ ॥ हंसचारस्वरूपेण येन ज्ञानं त्रिकालजम् । पञ्चतत्त्वेषु भेदोऽयं कथितः पूर्वसूरिभिः ॥ ८ ॥

इन सबका आशय यह है कि, पञ्चभूतात्मक मनुष्य शरीरके हृदयमें आठ पत्रोंका एक कमल होता है। उस कमलके आठों पत्रोंपर उपरोक्त क्रमानुसार सदैव दिनरात वायु चलता रहता है। उस वायुमें पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश—यह पांचों तत्व उपरोक्त नियमानुसार चलते रहते हैं और इनके सञ्चालनसे सब प्रकारका शुभाशुभ फल विदित होता है। किन्तु शोचनीय स्थल है कि इनका संचालन कैसे विदित होसकता है। यदि प्रातःकालसे गतकालका हिसाब लगाकर केवल उसीके अनुसार तत्त्वसञ्चालन मान लिया जाय तो वास्तविक तत्त्वज्ञान असम्भव प्रतीत हो सकता है। अतएव वास्तविक तत्त्वज्ञानके निमित्त "मध्ये पृथ्वी अधश्चापः" । "धराष्टाङ्गुलदीर्घिका" इत्यादिक उपायोंका आश्रय लेना समुचित है। यद्यपि बहुत कालतक स्वराभ्यास किये विना सम्यक् तत्त्वज्ञान, नहीं होता है तथापि जब यह निश्चय है कि हृदयकमलपर भ्रमण करनेवाला वायु—,

अग्निकोणे वायौ चरति भोक्तुं मनो भवेत्। दक्षिणपत्रे वायौ चरति रुषे क्रोधाय मनो भवेत्। निर्ऋतिकोणे वायौ चरति विषयभोगाय मनो भवेत्। पश्चिमपत्रे वायौ चलति सति मुदे सन्तोषाय मनो भवेत्। वायुकोणपत्रे वायौ चलति सति गमनाय मनो भवेत्। उत्तरपत्रे वायौ चलति कुपयितुं कुपां कर्तुं

-नासिकाके वाम या दक्षिण किसीभी एक छिद्रसे बाहर निकलता रहता है और इसीसे तत्त्वज्ञान किया जासकता है। तब इस कामके लिये उपरोक्त यह युक्तिया बहुत ही उपयोगी हैं कि नासिकाके दक्षिण वा वाम किसी भी छिद्रसे निकलता हुआ वायु (श्वास) यदि छिद्रके बीचसे निकलता हो तो पृथ्वीतत्त्व चलता है। यदि छिद्रके अधोभागसे अर्थात् ऊपरवाले ओष्ठको स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो जलतत्त्व चलता है। यदि छिद्रके ऊर्ध्वभागको स्पर्श करता हुआ निकलता हो तो अग्नितत्त्व चलता है। यदि छिद्रसे तिर्छा होकर निकलता हो तो वायुतत्त्व चलता है और यदि एकछिद्रसे बढकर क्रमसे दूसरेसे निकलता हो तो आकाशतत्त्व चलता है ऐसा जानना चाहिये।

अथवा सोलह अंगुलका एक शंकु बनाकर उसपर ४ अंगुल ८ अंगुल १२ अंगुल और १६ अंगुलके अन्तरपर रुई वा अत्यन्तमदवायुप्रवाहसे हिल सके ऐसा और कुछ पदार्थ लगाके उस शंकुको अपने हाथमें लेकर नासिकाके दक्षिण वा वाम किसी भी छिद्रसे श्वास चल रहा हो उसके समीप लगाकरके तत्त्वकी परीक्षा करे। यदि आठ अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो पृथ्वीतत्त्व समझना चाहिये। यदि सोलह अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो जलतत्त्व समझना चाहिये। यदि बारह अंगुलतक वायु बाहर जाता हो तो अग्नितत्त्व समझना चाहिये। यदि चार अंगुलतक बाहर जाता हो तो वायुतत्त्व समझना चाहिये। यदि अंगुल प्रमाण न हो तो आकाशतत्त्व समझना चाहिये। इसप्रकार तत्त्वसंचालन विदित करके शुभाशुभ फल जानना चाहिये।

मनो भवेत् । ईशानकोणे वायौ चलति सति तदा नृपास्पदाय मनो भवेत् । पत्रद्वयांतरचरे द्वयोः पत्रयोर्मध्ये वायौ चरति परस्मै मुदे सन्तोषाय मनो भवेत् । एवं सन्धौ चेत्सर्वत्र परस्मै ज्ञेयः । वायुसाधनं गुरूपदेशादेव बोद्धव्यम् ॥ ४० ॥

इस अष्टदल कमलके पूर्व पत्रमें वायु चलता हो तो संग्रामके वास्ते मन होता है । अग्निकोणके पत्रपर चलता हो तो भोजनके वास्ते । दक्षिण पत्रपर चल रहा हो तो क्रोध करनेके वास्ते । नैर्ऋत्य कोणके पत्रपर चलता हो तो विषय भोगके वास्ते । पश्चिम पत्रपर चलता हो तो आनंदके वास्ते । वायुकोणके पत्रपर चलता हो तो गमन करनेके वास्ते । उत्तरके पत्रपर चलता हो तो कृपा करनेके वास्ते । ईशान कोणपर चलता हो तो राज्यप्राप्तिके वास्ते । और दो पत्रोंके बीचमें वायु चलता हो तो परमानन्दकी प्राप्तिके लिये मन होता है ॥ ४० ॥

पृथ्व्यादितत्त्ववहनफलमाह ।

धराम्बुनी शुभे मेहो विमिश्रितं फलं भवेत् ।
मरुन्नभश्च दुःखदे मते स्वरार्थवेदिभिः ॥ ४१ ॥

धराम्बुनी तत्त्वे पृथ्वीजलतत्त्वे शुभौ भवतः । महः अग्नितत्त्वे चलने मिश्रितं फलं भवेत् । मरुद्वायुतत्त्वं नभश्चाकाशतत्त्वम् एते द्वे तत्त्वे दुःखदे मते इष्टे कथिते इत्यर्थः । कैः स्वरार्थवेदिभिः स्वराणामर्थं तात्पर्यं विदन्ति जानन्ति तैः ॥ ४१ ॥

पृथ्वी और जलतत्त्वमें शुभ फल होता है । अग्नितत्त्वमें शुभाशुभ मिला हुआ फल होता है और वायु तथा आकाशतत्त्व दुःखदायी होते हैं, यह स्वरशास्त्रके तात्पर्य जाननेवालोंका मत है ॥ ४१ ॥

हृत्कमलपत्रेषु रविचंद्रवहनकथनपूर्वकं प्राणवायु-
संचारेऽर्द्धघट्यादिज्ञानमाह ।

द्वे द्वे पत्रे इनेन्दू वहतः इह तयोः पंच पंचेति घट्यो नाकी गुर्वक्षरोत्तयाऽसुरथ च नतला सुघटी कथ्यतेऽत्रं । शुक्लादित्रित्रिघस्रैर्हिमगुरथ रविः प्रत्युपश्चेत् प्रवृत्तः श्रेयः स्यादकनाड्यांयदि वहति शिखी पंचघस्रैर्मृतिः स्यात् ॥ ४२ ॥

द्वे द्वे पत्र इति। इनेन्दू सूर्यचन्द्रौ प्रत्येके द्वे द्वे हृत्कमलदले अभिव्याप्य वहतः तयोस्तयोःपत्रयोःसूर्यचन्द्रवहनात् पंच पंच घट्यः भवन्ति । नाकीगुर्वक्षरोक्त्या,दशगुर्वक्षरोक्त्या दशगुर्वक्षरोच्चारणैरेकासुः प्राणः । कालरूपो भवति । नतला३६०सुः षष्ट्युत्तरत्रिशतप्राणपरिमाणैका घटी अत्र शास्त्रे कथ्यते । शुक्लादि शुक्लपक्षमारभ्य प्रतिपदादिभिः त्रिभिस्त्रिभिर्घस्रर्दिनैर्हिमगुश्चन्द्रः प्रत्यूषः प्रातःकाले पंचघटीर्वाति । पुनः पंच घटीरर्कः।एवं क्रमेणाहोरात्रम्।तदनु चतुर्थ्यादित्रिदिनैःरविः प्रातस्तावति काले वाति । एवंकृष्णपक्षे प्रतिपदादिदिनेष्वर्कः। पुनश्चतुर्थ्यादौ इन्दुः। एवंक्रमेणवाति । एवमुक्तेषु स्वस्वदिनेषु शशिरव्यादिषु-सोमो रविश्च प्रत्यूषः प्रातःकाले प्रवृत्तः स्यात्तदा

श्रेयः कल्याणं स्यात् । यदि एकस्यां चान्यां सौर्यां नाड्यां शिखी वह्नितत्त्वं पंचघस्रैर्दिनपंचकं वहेत् तदा मृत्युं विजानीयात् । तदुक्तं स्वरोदये—" आदौ चन्द्रस्सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे । प्रतिपद्युदितोऽह्नानि त्रीणि त्रीणि क्रमोदयः ॥ १ ॥ चन्द्रोदये यदा सूर्यश्चन्द्रः सूर्योदये यदा । अशुभं हानिरुद्वेगः शुभं सर्वं निजोदये ॥ २ ॥ शशाङ्कं चारयेद्रात्रौ दिवाचार्यो दिवाकरः । इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥३॥" ॥ इति ॥४२ ॥

उपरोक्त अष्टदलकमलके दो दो पत्रोंपर सूर्य चन्द्रमा पांच पांच घडी चलते हैं । (यथा दक्षिणनाडीकें एक एक पत्रमें अढाई अढाई घडी चलनेसे दोनों पत्रोंपर पांच घडी सूर्य चलता है । ऐसे ही वाम नाडीके दोनें पत्रोंमें पांच घडी चन्द्रमा चलता है । फिर वैसे ही ५ घडी सूर्य और ५ घडी चंद्रमा चलता है । इस प्रकार २० घडीमें संपूर्ण कमलमें चलकर रात्रिदिनमें तीनवार भ्रमण कर जाते हैं)। यहाँ एक घडीका प्रमाण इस प्रकार मानना चाहिये कि—दीर्घ अक्षरके दशवार उच्चारण करनेमें जितना समय लगे उतने समयका एक असु (प्राण वा श्वास) होता है । ऐसे ३६० श्वास जितनी देरमें चलें उतनी देरकी एक घडी होती है । ऐसी पांच पांच घडोमें सूर्य (दक्षिणस्वर) चंद्र (वामस्वर) चलते हैं । शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे तीन तीन दिन चंद्रमा और सूर्य

क्रमसे चलते हैं यदि यह प्रातःकालके समय नियमित दिनोंमें चलें तो कल्याणकारक होते हैं । और यदि पांच दिनतक एक नाडीमें अग्नितत्त्व चलै तो मृत्यु होजाती है * ॥ ४२ ॥

शुक्लपक्षे चन्द्रस्वरज्ञानचक्रम् ।

शुक्ल																	
	स्वर	चं.	चं.	चं	सू	सू.	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	शुभ
	तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	म

कृष्णपक्षे सूर्यस्वरज्ञानचक्रम् ।

कृष्ण																	
	स्वर	सू	सू	सू	चं	[illegible]	चं	सू	सू	सू	चं	चं	चं	सू	सू	सू	शुभ
	तिथि	१	२	३	४	५	६		८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	म

---

* (शुक्लपक्षे) प्रतिपत्त्रिषु चन्द्रस्य चतुर्थ्यांस्त्रिषु भास्वतः । सप्तम्यादित्रिषु विधोर्दशम्यास्त्रिषु भास्वतः ॥ १ ॥ ततस्त्रिषु विधोः प्राक्स्यादुदयः रवे रवेरपि । (कृष्णपक्षे) प्रतिपत्त्रिषु सूर्यस्य चतुर्थ्यांस्त्रिषु चन्द्रमाः ॥ २ ॥ सप्तम्यादित्रिषु रवेर्दशम्यास्त्रिषु चन्द्रमाः । ततस्त्रिषु रवे. प्राक्स्यादुदये स्वे शुभे इमौ ॥ ३ ॥ आदौ प्रतिपत्प्रभृतिरेव ज्ञेयः । पञ्चपञ्चघटीमानादेकैकस्य हि यो भवेत् । चन्द्रस्ततस्सूर्यस्सितेऽन्येऽर्कस्ततो विधुः ॥ ४ ॥ सूचना-इस प्रकरणमें जो तिथिका उदय लिया गया है वह पञ्चागस्थ तिथिके उदयानुसार नहीं लेना चाहिये । जिस दिन जो तिथि हो उसीको आजके प्रातःकालसे लेकर कल्ह (आगामी) प्रातःकाल पर्यन्त मानना चाहिये । और उन्ही ६० घड़ियोंमें उपरोक्त नियमानुसार चन्द्रस्वर और सूर्यस्वरका उदय मानना चाहिये । " सूर्योदयादारभ्य प्रतिपत्का, न तिथ्युदये " ।

तिथय.		शुक्ले पंचघट्यात्मकस्वरचारचक्रम ।											
प्रतीपदा	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वितीया	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तृतीया	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्थी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ		५	५	५	५	५	५	५	५	५	·	५
पंचमी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ	५	५	५	५	·	५	५	५	५	५	५	५
षष्ठी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ	५	·	५	५	५	·	५	५	५	५	५	५
सप्तमी	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अष्टमी	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	·	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
नवमी	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
दशमी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ	५	५	५	५	५	५	५	·	५	५	५	५
एकादशी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वादशी	स्व	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
त्रयोदशी	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्दशी	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	[illegible]
पूर्णिमा	स्व	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५

तिथयः	कृष्णे पंचघट्यात्मकस्वरचारचक्रम्।												
प्रतिपदा	स्व.	सू	च	सू	चं	सू	च.	सू	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वितीया	स्व.	सू	चं	सू	च	सू	च.	सू	च	सू	चं	सू	चं
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
तृतीया	स्व	सू	चं	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्थी	स्व	च	सू	चं	सू	चं	सू	च.	सू	चं	सू	च	सू
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
पंचमी	स्व	चं	सू	च	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०
षष्ठी	स्व	च	सू	च	सू	चं.	सू	च	सू	च	सू	च	सू
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
सप्तमी	स्व	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च	सू	च	सू	चं
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अष्टमी	स्व.	सू	च	सू	च	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च.
	घ	५	०	५	५	५	५	५	५	५	०	५	५
नवमी	स्व	सू	चं	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च	सू	चं.
	घ	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
दशमी	स्व.	च	सू	चं.	सू	च	सू	च	सू	चं	सू	च.	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५		५		५
एकादशी	स्व	चं	सू	चं	सू	चं	सू	च	सू	चं	सू.	चं	सू.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
द्वादशी	स्व	च.	सू	च	सू	च	सू	च	सू	चं.	सू	चं.	सू
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	०
त्रयोदशी	स्व.	सू.	चं	सू	चं.	सू	च	सू	चं	सू	चं	सू.	चं.
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
चतुर्दशी	स्व	सू	च	सू	चं	सू	च	सू	च	सू	च	सू.	चं
	घ.	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
अमावस्या	स्व	सू.	च.	सू.	चं	सू	च	सू	च	सू.	च	सू	च
	घ	५	५	५	५	५	५		५	५	५	५	५

रव्यादिवहने युद्धाद्यारम्भे जयमाह ।

अर्केऽग्नितत्त्ववहने हरिहेलया य-
द्येकोऽपि हन्ति सुबहून् किमुतात्र चित्रम् ।
शून्ये रिपून् स्वपृतनामपि वाहपक्षे
निक्षिप्य विक्षिपति लक्ष्ममरीन् क्षणेन ॥ ४३ ॥

अर्के सूर्यनाड्याम् अग्नितत्त्वं वहति चेत्तदा. हरिहेलया विष्णुलीलया सिंहलीलया वा एकोऽपि भटः सुबहून्योधान् हन्ति अत्र किं चित्रम् किमाश्चर्यम् । शून्ये शून्यनाड्यां रिपून् शत्रून् निक्षिप्य संस्थाप्य । स्वपृतनां स्वकीयां सेनां वाहपक्षे या नाडी चलति तत्र निक्षिप्य संस्थाप्य लक्षम् अरीन् शत्रून् एकेन क्षणेन विक्षिपति नाशयति ॥ ४३ ॥

यदि सूर्यनाडीमें अग्नितत्त्व चलता हो तो सिंहकी लीलाकी तरह अकेलाभी अच्छे अच्छे बहुत योद्धाओंको मार सकता है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । और जिस तर्फका स्वर नहीं चलता हो उस तर्फमें शत्रुको और वाहपक्ष अर्थात् जिस तर्फका स्वर चलरहाहो उस तर्फमें अपनी सेनाको स्थापन करे तो क्षणभरमें बहुत शत्रुओंका नाश कर सकता है ॥ ४३ ॥

रव्यादिनाडीवहने प्रश्नविशेषमाह ।

प्रश्ने चंद्रवहे तु वामगरेणोर्के जयो निश्चितं
सूर्ये दक्षगतेन कृच्छ्रविजयी शून्यस्थदूते क्षतिः ।

सूर्ये चेद्विषमाक्षराणि शशिनि ब्रूते समानि ध्रुवं
जेतासौ पुरतोपि वामग इव स्यात्पृष्ठगो दक्षिणः॥४४॥

प्रश्नकाले चन्द्रवहे सति चन्द्रनाड्यां वहत्यां सत्यां वामभागस्थितनरेण उक्ते कथिते सति निश्चितं जयो भवति । सूर्ये सूर्यनाड्यां वहत्यां सत्यां दक्षिणभागे गतेन नरेण प्रश्न उक्ते सति कृच्छ्रविजयी कष्टेन विजयी स्यात् । शून्यनाडीभागे स्थित्वा चेद्दूतः पृच्छति तदा क्षतिर्हानिर्वाच्या । सूर्ये सूर्यवहने दक्षिणनाडीवायौ चलति सति दूतो विषमाक्षराणि ब्रूते कथयति । शशिनि चन्द्रवहे वामनाडीवायौ चलति सति समानि अक्षराणि वदति तदा असौ जेता ध्रुवं निश्चयेन जयति । यः पुरतः अग्रतो भूत्वा पृच्छति स वामभागस्थो ज्ञातव्यः । यः पृष्ठगः सन् पृच्छति स दक्षिणभागस्थो ज्ञातव्यः । उक्तंच—"ऊर्ध्ववामाग्रतो दूतो ज्ञेयो वामपथस्थितः । पृष्ठे दक्षे तथाऽधस्ताद्दक्षवाहस्थितो मतः ॥ पूर्णनाडीस्थितो दूतो यत्पृच्छति शुभाशुभम् । तत्सर्वं सिद्धिमायाति शून्ये शून्यं न संशयः ॥ सूर्ये चेद्विषमान्वर्णान्समवर्णान्निशाकरे । वाहस्थे भास्करे दूतस्तदा लाभोऽन्यथा न हि॥" इति ॥ ४४ ॥

प्रश्नके समय चंद्रस्वर चलता हो और पृच्छक वाम भागमें खडा होकर पूछे तो निश्चय जय होता है। और सूर्यस्वर चलता हो

और पृच्छक दक्षिण भागमें खडा होकर पूछे तो कष्टसे जय होता है। यदि शून्यभाग अर्थात् जिस तर्फका स्वर नहीं चलता हो उस तर्फमें खडा होकर पूछे तो हानि होती है। यदि सूर्य (दक्षिण) नाडीमें विषम और चंद्र (वाम) नाडीमें समाक्षर उच्चारण करे तो अवश्य जय होता है। यहाँ–सम्मुखहो उसको वामभागमें और पृष्ठगत स्थित हो दक्षिणभागमें जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

प्रश्ने परं विशेषमाह ।

प्रश्नेः श्वासांतर्गमे चेज्जयः स्यांद्भङ्गो निर्यांत्यत्र सूक्ष्मं तदेतत् । लाभः पुत्रादेश्चे वाह्स्थदूते पृच्छे- त्युक्तेः शून्यंगे स्यांदसिद्धिः ॥ ४५ ॥

प्रष्टव्यस्य निश्श्वासादानाकाले चेत्प्रष्टा पृच्छेत्तदा तस्य जयः। अनिश्श्वासवायौ निर्याति बहिर्भवति भङ्गः स्यात्। वेदतत्सूक्ष्मं स्वरयोगान्तरेभ्यः । किंच पुत्रादेः पदार्थस्येष्टलाभ उक्तः। कथमित्याह–वाहस्थेति। दूते पृच्छके वाहस्थे वहन्नाडीप्रदेशसंस्थे सति तथा शून्यस्थे दूते पृच्छति असिद्धिः स्यात्। तथाचोक्तम्–" श्वासप्रवेशकाले तु दूतो वाञ्छति जल्पितुम् । तत्सर्वं सिद्धिमायाति निर्गमे नास्ति सुन्दरि " इति ॥ ४५ ॥

जिस समय श्वास भीतर जारहाहो उस समय पृच्छक प्रश्न करे तो जय और बाहर आरहा हो उस समय प्रश्न करे तो हानि होती है। किन्तु यहाँ यह विचार बडा सूक्ष्म है। यदि जिस तर्फका स्वर

चलरहाहो उस तर्फ खडा होकर पुत्रादिकोंका प्रश्न करे तो लाभ होता है। और जिस तर्फका स्वर नहीं चलताहो उस तर्फसे पूछे तो कार्य नहीं होता है ॥ ४५ ॥

सूर्यचन्द्रनाडीवहने कर्तव्यकर्म्माण्याह ।

चंद्रे वहे नृपविलोकनगेहवेशपट्टाभिषेकमुखेकर्म भवेच्छुभं यत् । सौरे तु मज्जनवधूरतिभुक्तियुद्धमुख्यं भवेदशुभकर्मफलाय सत्यम् ॥ ४६ ॥

चन्द्रे वहे इति । चन्द्रे वहे चंद्रसम्बन्धिनि वामनाडीवहने नृपस्य राज्ञो विलोकनम्, गेहप्रवेशो गृहप्रवेशः, पट्टाभिषेको नृपाणामेवन्मुखम् एतदादिकं यत्कर्म शुभं तत् शस्तं भवेत् । सौरे तु सूर्यनाड्यां दक्षवहने तु मज्जनं स्नानं, वधूरतिः भुक्तिर्भोजनं, युद्धम् एतदादिकं कर्म्म अशुभं सिद्धयति । यत्कर्म तदिह फलदं भवेत् । सत्यमिति बुद्ध्यनुकूलम् । उक्तंच-" यात्राकाले विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे । शुभकर्मणि सन्धौ च प्रवेशे च शशी शुभः ॥ १ ॥ ग्रहे द्यूतयुद्धेषु स्नानभोजनमैथुने । व्यवहारे भये भंगे भानुनाडी प्रशस्यते ॥ २ ॥ होमश्च शांतिकं चैव दिव्यौषधिरसायनम् । विद्यारंभं स्थिरं कार्यं कर्तव्यं च निशाकरे ॥ ३ ॥ मारणं मोहनं स्तंभं विद्वेषोच्चाटनं वशम् । प्रेरणाकर्षणं क्षोभं भानुनाड्युदये कुरु ॥ ४ ॥" इति ॥ ४६ ॥

चन्द्रस्वरमें राजदर्शन, गृहप्रवेश और राज्याभिषेकादि शुभकर्मोंकी सिद्धि होती है और सूर्यस्वरमें—स्नान, स्त्रीसंभोग, भोजन और युद्ध आदि अशुभ कर्मोंकी सिद्धि होती है ॥ ॥ ४६ ॥ +

रतिविधिं विवक्षुस्तत्र स्त्रीणां मुख्यं द्रावणमाह ।

वहति शशिनि वाश्चेदंगनायां नरस्य द्युमणिमनु कृशानुस्तत्र काले रतेषु । स्रवति मदनवारां निर्झरं सार्थं पुंसा यदि शिखिनवनीताशक्तिवद्राविता स्यात् ॥ ४७ ॥

अंगनायाः स्त्रियः शशिनि चन्द्रनाड्यां वहति सति वाः जलतत्त्वं चेद्वाति । नरस्य पुरुषस्य द्युमणिः. सूर्यनाडी तम् अनु लक्षीकृत्य कृशानुः अग्नितत्त्वं चेद्वाति । पुरुषस्य सूर्यनाडीवहने अग्नितत्त्वं वाति । तत्र काले रतेषु प्रारब्धेषु सत्सु सा योषित् मदनवारां कंदर्पजलानांनिर्झरं स्रवति । अथ यदि पुंसा सा योषित् नवनीताशक्तिवद्राविता स्यात्—यथा अग्निसंयोगे नवनीतं द्रवति तथा पुंसा भाविता वशीकृता-योषिन्मदनजलानां निर्झरं स्रवति बलहानिर्भवति, योषित्पराजयो भवति, पुरुषस्य जयो भवति ॥ ४७ ॥

+ इस स्वर प्रसंगमें जहां जहां चन्द्रस्वर, सूर्यस्वर,–चन्द्रनाडी, सूर्यनाडी,–चन्द्रे वहे- सूर्ये वहे–और चन्द्रचारे सूर्यचारे, इत्यादि वाक्योंका जो उपयोग किया गया है इन सबका यही प्रयोजन है कि नाकके दक्षिण और वाम दोनों छिद्रोंसे किसी भी एकसे श्वासकी हवा सदैव बाहर निकलती रही है । अतएव यदि हवा दक्षिण छिद्रसे निकल रही हो तब तो सूर्य और वामछिद्रसे निकल रही हो तब चन्द्र स्वर जानना चाहिये ॥

यदि जिस समय स्त्रीका चन्द्रस्वर चलरहा हो और उसमें जलतत्त्व चलताहो + और पुरुषका सूर्यस्वर चलरहा हो और उसमें अग्नितत्त्वः चलताहो तो उस समय रति (मैथुन–संभोग) करनेसे–जैसे आगसे नवनीत (मक्खन, लुनी घी) गलकर बह जाता है वैसेही वह स्त्री, पुरुषसे द्रवित होकर मदनजल त्याग करदेतीहै। एवं निर्बल और पराजित होजाती है ॥ ४७ ॥

वशीकरणमाह।

सुप्तायां निजवहद्दुष्णरश्मिनाड्यां चंद्रं चेद्वहनगतं पिबेत्तदानीम्। आमृत्योर्वशयति तामियं च कांतं चन्द्रेण द्युमणिवहं मुहुः पिबन्ती ॥ ४८ ॥

सुप्तायाः स्त्रियः भर्ता निजवहदुष्णरश्मिनाड्या स्त्रियश्चन्द्रं वहनगतं चन्द्रनाडीवायुं तदानीं पिबेत्। कोऽर्थः ? भर्ता स्वदक्षिणनाड्या स्त्रियो वामनाडीं पिबेत् तदा तां स्त्रियं आमृत्योः मृत्युपर्यन्तं वशयति वशीकरोति। इयं च योषित्स्वचंद्रनाड्या भर्तुः द्युमणिवहं सूर्यनाडीवायुं मुहुः वारं वारं पिबन्ती सती तदा आमृत्योर्मृत्युपर्यन्तं भर्तारं वशयति ॥ ४८ ॥

भर्ताका सूर्यनाडी चलती हो अर्थात् दक्षिणस्वर चलरहा हो और भर्ताके समीप शयन करतीहुई स्त्रीका चंद्र (वामस्वर) चल·

+ इन्ही चन्द्रस्वर, सूर्यस्वरोंमें पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश यह पांचों तत्त्व उपरोक्त हंसचारोक्तिके नियमानुसार चलते रहते हैं। किंतु इनका अनुलक्ष्य सरलसाध्य नहीं है। मिथ्याहार विहारादि दोषोंसे प्रश्न चलता आदमी ही यदि नाक पकडकर सिद्धासिद्ध वहनेमें तत्पर होजाय तो श्वासको बेलकिद करनेके सिवाय दूसरा फल प्रतीत नहीं होता है।

रहा हो तो भर्ता अपने दक्षिणस्वरसे स्त्रीके वामस्वरका पान करे तो स्त्री मरणपर्यंत वश होजाती है ऐसे ही यदि स्त्री अपने वामस्वरसे भर्ता (पति) के दक्षिण स्वरका वारंवार पान करे तो पुरुष मृत्युपर्यंत वशीभूत होजाताहै ॥ ४८ ॥

मदनयुद्धमाह ।

मोहनं मदनयुद्धमूचिरे तत्सुधीरण इवात्र चेद्बलम् ।
प्रोक्तमेतदुपैतिमैथुनंद्रावयेत्तदबलां सुविह्वलाम्॥४९॥

मोहनं सुरतं, बुधाः मदनयुद्धं कंदर्पयुद्धम् ऊचिरे कथयामासुः।कोऽर्थः-तत्र कंदर्पयुद्धे सुधीः बुधः रणे संग्रामे इव बलम् आचरेत् अंगीकुर्यात्। यथा रणे स्वरबलविचारः क्रियते तथा सुरतेऽपि स्वरबलं विचारणीयम् । किं कुर्वन् प्रोक्तं बलं यदा अंगीकुर्वन् सन् मैथुनं सुरतं उपैति प्राप्नोति तदा सुविह्वलाम् अबलां स्त्रियं द्रावयेत् निर्बलां कुर्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥

सुंदर बुद्धिवाले पण्डित लोग मोहन (स्त्रीसंयोग) को मदनयुद्ध कहतेहैं । इस युद्धमेंभी संग्रामकी तरह उक्तस्वरबल लेना चाहिये । यदि स्वरबल लेकर मैथुन करे तो मदविह्वला अबलाको द्रावित करके निर्बल कर सकता है ॥ ४९ ॥

द्यूतविषये स्वरबलमाह ।

स्वरेच्छायांनिलोर्कैन्दुयोगिनीराहुभूर्बलैः ।
अन्यैश्च द्यूतमाबध्नंजयत्येव धनं वहु ॥ ५० ॥

२५८ः बालः कुमारको वर्णस्वराः, छाया सूर्यचन्द्रयोश्छाया, अनिलो वायुः, अर्कः सूर्यः, इन्दुः चन्द्रः, योगिनी प्रसिद्धा, राहुभूबलानि च एतेषां बलैः अन्यैश्च बलैः कालचारार्द्धप्रहरहोरादीनां बलान्यादाय तैर्बलैः सहायैर्द्यूतं क्रीडाविशेषम् आवध्नन् कुर्वन् तदा बहु धनं जयत्येव ॥ ५० ॥
"ॐ ह्रीं रणहुंफट्स्वाहा " (इति द्यूतमंत्रः) ।

बाल कुमारादि वर्णस्वर, सूर्यचन्द्रादिकी छाया, वायु, सूर्य, चन्द्र, योगिनी, राहु और भूबल इत्यादि सब बलोंको विचारकर यदि द्यूतक्रीडा करे अर्थात् जुआ खेले तो बहुत धनको जीत सकता है ॥ ५० ॥

इति समरसारे तत्त्वविचारस्वरकथनप्रकरणम् ।

भक्ष्यधारणादिना जयसाधनान्यौषधान्याह ।

आस्ये तालजटाथकेतकिदलं शीर्षे च खार्जूरके मूलेऽङ्कस्थे इषुर्लगेन्न संघृतैर्भुक्तैरजीर्णैश्च तैः । कंमायुत्तरमूलिकानिरशनैः पुष्यार्क आत्ता धृता जग्धा वा सह तंदुलांबुभिरथो पाठा जटापीदृशी ॥ ५१ ॥

आस्ये मुखे तालजटा तालवृक्षस्य मूलं स्थाप्य, केतकीदलं केतकीपत्रं शीर्षे मस्तके धार्यम्, खार्जूरके मूले खर्जूरस्य वृक्षस्य मूले अंकस्थे सति इषुःबाणःन लगेत् । अथवा सघृतानि इमानि तालमूलं, केतकीपत्रं, खार्जूरमूलम् इमानि भुक्तानि यावत् उदरे जीर्णानि न भवंति तावत् स च बाणो न लगेत् । कंसारी हींसेवि प्रसिद्धा लता,तस्या उत्तरदिक्स्था मूलिका मूलं निरशनैः शना-

वुपोष्य पुष्यार्कयोगे आत्ता गृहीता धृवा शरीरे । सह तंदुलाम्बुभिर्जग्धा खादिता वा शरीरे शरीरवारणाय स्यात् । अथ पाठा जटापि । पाठा प्रसिद्धा तन्मूलमपि ईदृक् शनिवारे निरशनैः पुरुषेण पुष्यार्के ग्राह्यम् । सघृततंदुलजलेन वा सह भुक्तश्चेत्तदापि वाणो न लगेत् ॥ ५१ ॥

मुखमें तालकी जड, शिरमें केतकीके पात और गोदमें खजूरकी जड लगावे तो बाण नहीं लगता है । अथवा इन सबको घीमें मिलाकर खाजाय, तो जबतक इनका अजीर्ण रहे तबतक बाण नहीं लगता है । अथवा केसारीकी उत्तरदिशाकी तर्फकी जडका शनिवारके दिन उपवास करके पुष्यसहित इतवारके दिन लाकर धारण करे तो वाण नहीं लगता है । अथवा घीमें और आंवलेके पानीके सहित खावे तो भी वाण नहीं लगता है । अथवा पाठाजटाको इसी प्रकार धारण करे वा खावे तो भी बाण नहीं लगता है ॥ ५१ ॥

अंकोलो लक्ष्मणा पुंखा सर्पाक्षी शिखिचूलिका ।
विष्णुकांता काकजंघा नीली देवी च पाटला॥५२॥
भुजास्यमूर्धगा भुक्ता तज्जटैकापि वारयेत् ।
रणेदारुणशस्त्रौघं यावज्जीर्यति नोदरे ॥ ५३ ॥

अंकोलः प्रसिद्धः, लक्ष्मणा पुरुषाकारमूलौषधिविशेषः, पुंखा शरपुंखा, सर्पाक्षी—सर्पनेत्राकृतिपुष्पा, शिखिचूलिका मयूरशिखा विष्णुकान्ता, नीलपुष्पा—प्रसिद्धा, काकजंघा तदाकारा, नीली प्रसिद्धा, देवी सहदेवी, पाटला प्रसिद्धैव तज्जटा एतासामोषधीनां मूलानि तन्मध्ये एकापि जटा भुजे बाहौ धृता आस्ये मुखे वा धृता शिरसि स्थिता वा खादिता वा रणे संग्रामे

दारुणं शस्त्रौघं तीक्ष्णशस्त्रसमूहं वारयेत् । कियत्कालमित्यपेक्षिते यावदिति । यावत्पर्यन्तमुदरे न जीर्यति । भुक्तपक्षे चैतत् धारणपक्षे तु यावद्धारणं तावच्छस्त्रवारणम् ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अकोहर, लक्ष्मणा (सफेद कटेली), शरपुंखा, सर्पाक्षी, मयूरशिखा, विष्णुक्रान्ता, काकजंघा, नीली, सहदेवी और पाटली यह औषध भुज, मुख और मस्तकमें लगावे । अथवा इनमेंसे किसी भी एककी जडको खालेवे तो जबतक वह नहीं पचे तबतक रणमें दारुण शस्त्रोंके समूहको निवारण करती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्वर्णाभा सिंहिकाकिण्यां सिंहीघृष्टैः सतज्जटैः ।
अंतस्थः पारदैः सिक्थमुद्रो जयद आस्यगः ॥ ५४ ॥

स्वर्णाभा स्वर्णवत्पीतवर्णा या सिंही काकिणी कपर्दकस्तस्मिन् सिंही कंटकारी तन्मूलरसेन घृष्टःसिंहीजटासहितःपारदः सोऽन्तरस्थो मध्यस्थः । सिक्थेन मुद्रमीणकेन मुद्रितः । आस्यगो मुखस्थो जयदः रणादौ विजयदाता ॥ ५४ ॥

सोनेके रंग जैसी पीली, सिंहीनामकी कौडीमें कटेलीके पत्ते और जडके रसमें घोटा हुआ पारा भरकर गुटिका बनावे और उस गुटिकाको संग्रामके समय मुखमें रखले तो जय होता है ॥ ५४ ॥

चक्रमर्दकगोजिह्वाशि खचूडाजटास्वपि ।
एकैका वादजयदा पुष्यार्कात्तास्यमूर्द्धगा ॥ ५५ ॥

चक्रमर्दको चकवंदः, गोजिह्वा गोभी, शिखिचूडा मयूरशिखा, एतासु मध्ये एकैका जटा पुष्यार्कयोगे आत्ता गृहीता आस्यगा मूर्द्धगा वादजयप्रदा ॥ ५५ ॥

चकवंद (पँवाड), गोभी, मयूरशिखा इनमेंसे किसी एककी जड पुष्यार्कके दिन ग्रहण करके मुख, अथवा मस्तकमें धारण करे तो वादमें जय होता है ॥ ९९ ॥

' विशेष ' ऊपर जो औषधि+ कहीगई हैं इन सबको उपाडने लाने

+ ईश्वरी महादेवी च कुमारी वैष्णवी तथा । वाराही वज्रिणी चण्डी तथा रुद्रजटाभिधा ॥ १ ॥ लाङ्गली सहदेवी च पाठा राजी पुनर्नवा । मुद्गरी भूतकेशी च सोमराजी हनूजटा ॥ २ ॥ श्वेतापराजिता गुञ्जा श्वेता च गिरिकर्णिका । क्षुद्रिका शङ्खिनी चैव पिङ्गनी शरपुङ्खिका ॥ ३ ॥ खर्जूरी केतकी ताडी पूगी श्यामारिकेलिका । अञ्जनः काञ्चनारश्च चम्पकोऽश्मतकः कुटु ॥ ४ ॥ अपामार्गार्कमूलौ च अश्वमूलो वटस्तथा । शतमूली बलायुग्म गोजिह्वोत्पलसारिका ॥ ५ ॥ अष्टलोहा रसा वज्री हरिद्रा तालक शिला । एताश्चौषधयो दिव्या जयार्थे संग्रहेद्बुधः ॥ ६ ॥ खर्जूरी मुखमध्यस्था कटिबद्धा च केतकी । भुजदण्डस्थितस्तालः सर्वशस्त्रनिवारणः ॥ ७ ॥ दक्षबाहुस्थितश्चार्को वामेऽपुहृदये धरा । क्षः पृष्ठस्थितो युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ॥ ८ ॥ (यामले) सिंही व्याघ्री मृगी हंसी चतुर्धैव कपर्दिका । एतासां लक्षण वक्ष्ये प्रभाव च यथाक्रमम् ॥ १ ॥ सिंही सुवर्णवर्णा च व्याघ्री धूम्रा सरेखिका । मृगी तत्र विजानीयात्पीतपृष्ठी सितोदरी ॥ २ ॥ हंसी धवलतरा श्वेता विदला नातिदीर्घिका । एव विशेषान्विज्ञाय ततः कर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥ औषधी सिंहिका नाम तस्या मूलस्य यो रसः । सिंहीकपर्दिकामध्ये क्षेप्यस्तन्मूलसयुतः ॥ ४ ॥ पिधाय वदन तस्याः सिक्थेन च समन्वितः । अस्या वक्त्रस्थितायां ■ सिंहवद्भायते नरः ॥ ५ ॥ व्याघ्रीरसेन सपृक्तः पारदो मूलसयुतः । पूर्ववत्साधयेद्व्याघ्री फल चैव तथाविधम् ॥ ६ ॥ मृगमूत्रेण सभिन्ना मृत्तिकारससयुता । मृगधिष्ण्ये क्षिपेन्मृग्या तस्याः फलमतः शृणु ॥ ७ ॥ मुखमध्ये स्थितायां च वशीभवति मानवः । रतिकाले मुखस्थाया बालाभाग्यहरो नरः ॥ ८ ॥ हंसपादीरसैर्युक्तः पारदो मूलसयुतः । हंसीमध्ये क्षिपेद्धीमान् मुखस्था सर्वसिद्धिदा ॥ ९ ॥ इति ॥

और ग्रहण करनेकी यह विधि है कि जिस किसी दिन पुष्यनक्षत्र और इतवार हो उसके प्रथम दिन शनिवारको उपवास करके शुभ समयमें इच्छित औषधिको नाल सुपारी और अक्षतादिसे " ओं नमो नारायणाय स्वाहा" इस मंत्रसे न्यौतकर रविवारके दिन औषधिके समीप जाकर खैरकी खूंटीसे खोदके " ओं क्रीं अनु हुं फट्ट स्वाहा" यह मंत्र बोलता हुआ उपाडकर " ओं कुमारजननीय स्वाहा" इस मन्त्रसे ग्रहण करके " ओं सर्वार्थसाधनीयस्वाहा " इस मन्त्रसे ले आवे और फिर यथासमय काममें लेवे तो यथोक्त फल होता है।

इति समरसारे औषधप्रकरणम् ।

यायिस्थायिनोर्जयपराजयौ विवक्षुः कोटचक्रमाह ।

भास्राणि प्रलिखेदुपर्युपरि च त्रीणीशदिश्यग्निभाद्-
बाह्यात्त्रीणि लिखांतराच्छिवभतोप्यैन्द्र्यां च सार्पं बहिः।
आग्नेयादिति पितृतो यमदिशि न्यस्यन्बहिःसप्तमं
मैत्राद्वासवतोऽन्ययोःखयबहिर्दं मध्यमेतश्चदम् ॥५६॥

भवर्णेन चतुःसंख्या लक्ष्यते । ततः भास्राणि चतुरस्राणीत्यर्थः । तानि उपर्युपरि च त्रीणि । एकस्य चतुरस्रस्य लघुनः उपरि महदन्यल्लिखेत् । तदुपरि च ततोऽधिकमन्यदेवं त्रीणि लिखेदित्यर्थः । तत्र च मध्यस्थं चतुरस्रं कोटसंज्ञम्, तेषु त्रिष्वपि चतुरस्रेषु ईशदिशि ऐशान्याम् अग्निभात्कृत्तिकानक्षत्रमारभ्य बाह्याच्चतुरस्रादारभ्य त्रिष्वपि ऐशान्यामन्तर्विशंति त्रीणि मृगशिरोऽन्तानि लिखेति' शिष्यनिमन्त्रणे लोट् । अन्तरात् मध्यवर्तिनश्चतुरस्रात् शिवभमार्द्रां तदारभ्य त्रीणि भानि ऐन्द्र्यां प्राच्यां

दिशि चतुरस्रत्रयप्राग्रेखामध्यस्थानेषु वहिर्निस्सरन्ति लिख । सार्पमाश्लेषां वहिर्वाह्यचतुरस्रापि वहिः प्राच्यमेतल्लिख । इत्यमुनैव प्रकारेण आग्नेयात्कोणादारभ्य पितृतो मघानक्षत्रायमदिशि दक्षिणस्यां सप्तमं विशाखां वहिर्न्यस्य लिख । मैत्रादनुराधाभाद्वासवतो धनिष्ठाभाच्च अन्ययोर्नैर्ऋत्यवायव्ययोः कोणयोः प्राग्वल्लिखेति सम्बन्धः । एवं दिग्विदिग्वाह्यचतुष्कत्रयेण खय १२ द्वादशभानि वहिःचतुरस्रे लिखितानि स्युः । मध्ये चतुरस्रे च दं ८ दिग्विदिक्स्थतया अष्टौ स्युः । अन्तः मध्यचतुरस्रे च दं ८ अष्टौ भानि स्युः । एवं कोटचक्रे साभिजिति अष्टाविंशतिभानि लिखितानि स्युः चक्रम् ॥ ५६ ॥

[यहां जो कोटचक्रके विषयमें वर्णन कियाजाता है इसी चक्रको एक इस प्रकारका किला समझो कि मानों किसी जगह एक राजाका सेना आदि जन समूह सहित पुर, आवश्यक सामग्री सहित वसाहुआ है (१) उसके चारों तरफ चार कूंटका एक सुविशाल किला वा परकोटा खडा हुआ है (२) और इस परकोटेके वाहर चोतर्फ अन्य सेना आदि जनसमूह उपस्थित होनेका स्थल है (३) इस प्रकार यह किला तीन भागोंमें विभाजित होरहा है । अर्थात् (१) भीतर गढप· तिका जनसमूह सहित पुर (२) वीचमें परकोटा और (३) वाहर अन्य सेना आदि हैं । अतएव इन्हीं तीन विभागोंपर लक्ष्य देकर 'भान्याणि मलिखे०' इसके अनुसार तीनरेखात्मक चतुरस्र चक्र संघटित कियागया है । उसमें प्रथम रेखात्मक भीतरकी तरफके स्थलको मध्य वा अंतर । द्वितीय रेखात्मक परकोटेको—वप्रकोट प्राकार वा वप्रमध्य । और तृतीय रेखात्मक वाह्यस्थलको वाह्य और वेष्टक

इन नामोंसे उल्लेख किया गया है। अतएव ग्रहस्थित्यनुसार फल देख नेमें इसका स्मरण रखना चाहिये]

भास्त्र अर्थात् चार कोणका तीन रेखात्मक चक्र बनावे। और उसके ईशानकोणमें बाहरवाली रेखासे आरंभ करके कृत्तिकादि तीन नक्षत्र लिखे। फिर पूर्वकी तर्फ भीतरवाली रेखासे आरंभ करके आर्द्रासे ति नक्षत्र लिखे और इन तीनोंके बाहर श्लेषा लिखे, फिर ऐसेही अग्निकोणमें मघा आदि तीन नक्षत्र और दक्षिणमें हस्तसे तीन लिख। यहां बाहर विशाखा लिखे; फिर ऐसेही नैर्ऋत्यकोणमें अनुराधा आदि तीन लिखे और पश्चिममें पूर्वाषाढादि तीन लिखे और बाह्यभागमें श्रवण लिखे और वायव्यमें धनिष्ठा आदि तीन नक्षत्र लिखे और उत्तरमें उत्तराभाद्रपदादि तीन लिखे और बाह्यभागमें भरणी लिखे तो "कोटचक्र" बन जाता है। इसमें १२ बाह्यके ८ मध्यके और ८ अन्तरके नक्षत्र होते हैं ॥ ९६ ॥

कोणभानि प्रवेशे स्युर्द्वादशान्यानि निर्गमे।
पृष्ठपष्ठं सप्तकेषु मध्ये स्तम्भचतुष्टयम् ॥ ९७ ॥

कोणा ईशानाद्याः तत्र लिखितानि यानि कृत्तिका, मघा, अनुराधा, धनिष्ठादीनि त्रीणि त्रीणि भानि कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरः, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूलं, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा-एतानि द्वादश कोणभानि तानि ग्रहाणांकोटप्रवेशे भवन्ति। प्रवेशतयालिखितत्वात्। अन्यानि पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, चित्रा, स्वाति, विशाखा, उत्तराषाढ, अभिजित, श्रवण, रेवती, अश्विनी, भरणी, एतानि चतसृषु प्राच्यादिदिक्षु स्थितानि द्वादशभानि

निर्गमे गृहाणांस्युः । निर्गमतया लिखितत्वात् । सप्तकेषु अश्वि-नीपुष्यस्वात्यभिजिदादिषु चतुर्षु चतुर्दिक्षु स्थितिषु प्रथमात् यत्षष्ठं षष्ठं यथा अश्विन्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठम् आर्द्रा । पुष्यादि सप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठं हस्तः । स्वात्यादिसप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठं पूर्वाषाढः । अभिजिदादिसप्तसु नक्षत्रेषु षष्ठम् उत्तरा भाद्रपदा एतानि चत्वारि भानि मध्ये कोटस्थं भचतुष्टयं स्तम्भ संज्ञं स्यात् ॥ ५७ ॥

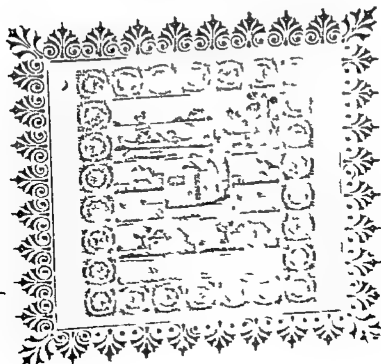
चारों कोणके बारह नक्षत्र प्रवेशक होते हैं । अन्य बारह नक्षत्र निर्गमके होते हैं । और अश्विन्यादि सात सातमें छठे छठे चार नक्षत्र बीचमें स्तम्भके होते हैं ॥ ५७ ॥

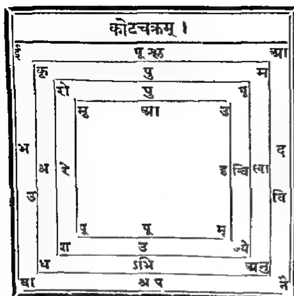
उपेलक्षणमेवं कृत्तिकादौ प्रथमं दुर्गभमेवं वैरिभं वा।
ग्रहचक्रमुडुस्थम।लिखे द्वै चैतुरस्रं वैरणं च मध्यमं
स्यात् ॥ ५८ ॥

इदं पूर्वश्लोके कृत्तिकादिभलेखनमुक्तम्,तदुपलक्षणमेव न तु नियमेनोक्तम् । कृत्तिकादौ च लेख्ये प्रथमं दुर्गस्थानं दुर्गभं पूर्वोक्तादवकहडचक्राज्ज्ञातव्यम् । दुर्गनक्षत्रं कोणभम् ईशान-कोणे लेख्यम् । अथवा वैरिभंशत्रुभम् । अवकहडचक्रोत्थंवद्वा ईशानकोणे लेख्यम् अन्यानि प्र.गवल्लेख्यानि। तेषु च भेषु ग्रहचक्रं सूर्यचन्द्रादिनवग्रहान् उडुस्थनक्षत्रगततया लिखेत् । समस्तग्रहाः स्वस्वभुज्यमाने नक्षत्रे स्थाप्या इत्यर्थः । अथ कोटचक्रे मध्यमं चतुरस्रं वरणं प्राकारस्थानीयं भवेत् ॥५८॥

ऊपर जो कृत्तिका आदि लिखा है वह केवल उपलक्षण है। ऐसा नियम नहीं है कि कृत्तिकासे आदि लेकरही लिखना) दुर्ग (किला) वा वैरीका जो नक्षत्र हो उसीसे आरंभ करके उपरोक्त रीतिके अनुसार "कोटचक्र" में नक्षत्रोंको लिखे। और जिस नक्षत्रपर जो ग्रह हों उनकोभी उन नक्षत्रोंपर स्थापन करे। इस चक्रमें बीचका चतुरस्र जो है यह प्राकारस्थानीयहै ॥ ९८ ॥

कोटचक्रस्य चित्रम्।





संवत् १९६८ शके १८३३के आश्विन शुक्ल १० दशमी चंद्रवारको "पात्र पुञ्ज" नामक कल्पित क्लिपर ग्रहस्थिति देखनीहै अतएव पात्रपुञ्जोंके नामनक्षत्र उत्तराफाल्गुनीको ईशानकोणमें स्थापितकरके उपरोक्त क्रमानुसार "कोटचक्र" निर्माण किया तो इसप्रकार तैयार हुआ ।

शुक्र जे मू
बुध उ ऽनु
सूर्य शुरु
ह चि वि उ चन्द्र
स्वा केतु
पू म श्ले पु ऽभि श्र ध श
राहु
उ ऽश्वि रे
भ उ
आ
कृ शनि
मृ रो भौम पू

उसदिन हस्तपर सूर्य, उत्तराषाढपर चन्द्रमा, रोहिणीपर मङ्गल, उत्तराफाल्गुनीपर बुध, विशाखापर गुरु, उत्तराफाल्गुनीपर शुक्र, कृतिकापर शनि, अश्विनीपर राहु और स्वातिपर केतु है। अतएव इनको भी कोटचक्रमें यथास्थानपर स्थापना किया तो फलदेखनेके उपयोगी चक्र तैयार होगया ॥९८॥

क्रूरसौम्यग्रहावस्थित्या दुर्गभंगरक्षादिकमाह ।

क्रूरा अंतर्बाह्यगाः सौम्यखेटा दुर्गे भंगो वेष्टके वैपरीत्यात् । क्रूरा मध्ये वप्रगाः सौम्यखेटा भेदो भंगश्चात्र युद्धं विनापि ॥ ९९ ॥

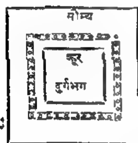
क्रूराः पापग्रहाः अभ्यन्तरे । बाह्यगाः सौम्यखेटाः शुभग्रहाः तदा दुर्गभंगः कोटभंगो भवति । वैपरीत्यादेवं वेष्टकभंगः । कथं— शुभग्रहाः अभ्यंतरगाः पापग्रहाः बाह्यस्था- स्युस्तदा वेष्टकानां भंगः । क्रूरा मध्ये सौम्यखेटा वप्रगाः कोटबाह्यस्थाः अत्र योगे युद्धं विनापि भेदो भंगश्च भवति ॥ ९९ ॥

क्रूरग्रह कोटके भीतर हों और सौम्यग्रह कोटके बाहर हों तो किलेका भङ्ग होता है (१) यदि इससे विपरीत अर्थात् सौम्यग्रह भीतर हों और पापग्रह बाहर हों तो वेष्ट अर्थात् आए हुए राजाकी सेनाका भङ्ग होता है (२) और क्रूरग्रह मध्यमें अर्थात् परकोटेके भीतर और सौम्यग्रह कोटपर हों तो विनायुद्धही भेदसे भंग होजाता है (३) ॥ ९९ ॥

उदाहरण ।

इस कोटप्रसंगके उदाहरणमें भाषाटीकामें जहां जहां (१) (२) आदि संख्याके अंक दियेगये हैं तहां तहाकी स्थितिके अनुसार उदाहरणरूप चक्र लिख दिये हैं । अतएव इन चक्रोंकी स्थितिके अनुसारही सर्वत्र फल जानना चाहिये ॥५९॥

(१) (२) (३)





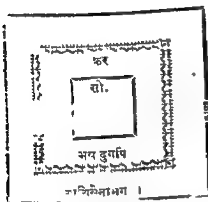


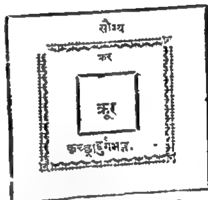
व्यत्यासे त्वावेष्टकस्यैव भंगो दुर्गे भंग्नेऽप्युद्भवे नात्र मिथ्या । प्राकारेऽतः क्रूरखेटा बहिश्चेत्सौम्याः कृच्छ्राद्दुर्गभंगस्तदानीम् ॥ ६० ॥

व्यत्यासे उक्तवैपरीत्ये आवेष्टकस्यैव भंगः । कथं शुभग्रहाः कोटमध्यस्थाः । पापग्रहाः वप्रगाः कोटस्थाः । तदा दुर्गे भग्नेपि आवेष्टकस्यैव भंगः । अत्र मिथ्या च—सत्यमेव वदेत् । प्राकारे मध्यकोट, अंतःकोटमध्ये क्रूरखेटाः पापग्रहाः । बहिश्चेत्सौम्याः शुभग्रहाः तदानीं कृच्छ्रात्कष्टाद्दुर्गभंगो वाच्यः ॥६०॥

विपरीत अर्थात् सौम्यग्रह कोटके भीतर हों और पापग्रह कोटपर हों तो किला टूटजाय तौ भी बाहरकी सेनाकाही नाश होताहै (१) और परकोटेपर तथा परकोटेके भीतर तो पापग्रह हों और परकोटेसे बाहर सौम्यग्रह हों तो कष्टसे किलेका भङ्ग होता है ॥६०॥

(१) उदाहरण । (२) 37260



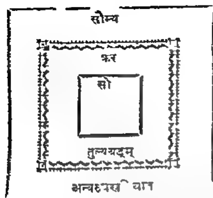


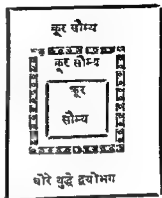
वप्रे बाह्ये क्रूरखेटाश्च मध्ये सौम्याः खंडिः स्यान्न दुर्गस्य भंगः । वप्रे सौम्या अन्तरा बाह्यतश्च क्रूरा भंगः सैन्ययोः स्याद्वयोस्तु ॥ ६१ ॥

वप्रे, बाह्य क्रूरग्रहाश्चेत्स्युः । मध्ये सौम्यास्तदा दुर्गे खंडिमात्रं स्यान्न दुर्गस्य भंगः । वप्रे सौम्याः । अन्तरा बाह्यतश्च क्रूराः क्रूरखेटाः तदा द्वयोः स्थायियायिसैन्ययोः भंगः स्यात् ॥ ६१ ॥

यदि पापग्रह परकोटेपर और बाहर हों और सौम्यग्रह भीतर हों तो दुर्ग खंडितमात्र होजाता है। टूट नहीं सकता है (१) और सौम्यग्रह तो किलेपर अर्थात् परकोटेपर हो और क्रूरग्रहबाहर और भीतरहों तो यायी (चढ़ाईकरके आनेवाला राजा) की और स्थायी (दुर्गाधीश राजा) की दोनोंकी सेनाकाभङ्ग होता है ॥ ६१ ॥

उदाहरण ।

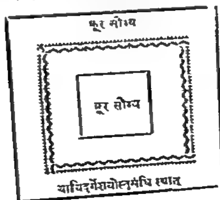




तुल्यौ बाह्योंतश्च चेत्क्रूरसौम्याः
सन्धिर्वाच्यो यायिदुर्गेशयोस्तु ।

तुल्याः समक्रूरसौम्याः पापग्रहाः शुभग्रहाः बाह्ये देश अन्तर्देशे च स्युस्तदा यायिदुर्गेशयोः सन्धिः प्रीतिर्वाच्यः ।

यदि कोटके बाहर और कोटके भीतर दोनों जगह क्रूर और सौम्यग्रह तुल्य हों अर्थात् बाहर जितने क्रूर ग्रह हों उतनेही सौम्यग्रह भी हों । और भीतर जितने सौम्यग्रह हों उतनेही क्रूरग्रह हों तो स्थायी (दुर्गाधीश) और यायी दोनों राजाओंमें सन्धि (राजीनामा) होजाता है ।

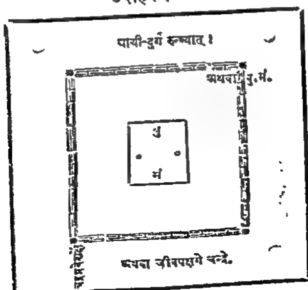


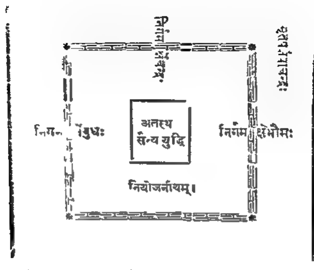
ज्ञारौ स्तंभर्क्ष प्रवेशेपि वा चेच्चंद्रो जीवत्पक्षगः स्यात्प्रवेशे ॥ ६३ ॥ रुन्ध्याद्दुर्गं वा कुलौघेऽर्थे युद्धं व्यत्यासे नांतस्थसैन्यं विदध्यात् । दिक्ष्विज्यारौ काव्यवक्रस्थसौम्यौ दुर्गे भंगं निर्दिशन्ति क्रमेण ॥ ६४ ॥

ज्ञो बुधः आरो भौमः । एतौ चेत्स्तंभनक्षत्रगतौ रतः । प्रवेशकोणभेषु मध्ये कस्मिंश्चिद्वा स्याताम् । चन्द्रस्तु राहुकालानलचक्रे वा जीवत्पक्षगानि नक्षत्राणि तेषां मध्ये कस्मिंश्चित्स्यात् प्रवेशे कोणनक्षत्रे वा स्यात्तदा दुर्गं रुन्ध्यात्॥६३॥ यायी स्वसैन्येनारिदुर्गम् अकुलौघे अकुलगणे रुन्ध्यात् वेष्टयेत् । अकुलौघश्च—भरणी, रोहिणी, पुनर्वसु, श्लेषा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, स्वात्यनुराधोत्तराषाढा, धनिष्ठोत्तराभाद्रपदा, रेवतीसंज्ञानि १२ भानि । प्रतिपदा, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, नवम्येकादशी, त्रयोदशी, पंचदश्यष्टतिथयः । रवि, सोम, शनि, गुरु ४ वारा इति । अथ व्यत्यासे सति तु अन्तःस्थस्य स्थायिनः सन्यं यायिना सह युद्धं विदध्यात् । व्यत्यासश्चैवं बुधभौमौ स्तम्भर्क्ष न स्यातां न प्रवेशर्क्षे किन्तु निर्गमर्क्ष । चन्द्रो मृतगो न तु जीवत्पक्षगः न च प्रवेशर्क्षे । किन्तु निर्गमर्क्षे कुलगणे च तदा स्थायी युद्धयेत । दिक्षु प्राच्यादिषु चतसृषु दुर्गस्य ईज्यो गुरुः, आरो भौमः, काव्यः शुक्रः, वक्रस्थसौम्यो वक्रोबुधः एते चेत्क्रमेण स्युस्तदा तर्हि मन्दुर्गे भंगं दिशन्ति ॥ ६४ ॥

'ऊपरके चक्रोंमें तो दोनों ओरकी सेना तथा किलेका भंग होना न होना विदित कियागयाहै। अब नीचेके चक्रोंसे कोटको घेरनेका तथा आई हुई सेनाको परास्त करनेके लिये आक्रमण करनेका समय सूचित किया जाताहै ।' यदि बुध और मंगल स्तंभके नक्षत्रोंमें अथवा प्रवेशके नक्षत्रोंमें हों और चन्द्रमा जीवपक्षके नक्षत्रोंमें अथवा प्रवेशके नक्षत्रोंमें हो तो ऐसे समयमें यायी (चढाईकरके आनेवाला) राजा अपनी सेनासे किलेपर आक्रमणकरे। (१) अथवा " अकुलगण " जो ऊपर १० वें श्लोकमें कहचुकेहैं उसमें किलेपर आक्रमण करे (घेरलेवे)। (२) और इससे विपरीत अर्थात् बुध भौम तो निर्गमनक्षत्रोंमें हों और चंद्रमा मृतपक्ष वा निर्गम नक्षत्रोंमें हो तो स्थायी (किलेका अधिपति) राजा आईहुई सेनाको परास्त करनेके लिये उपरोक्त समयमें अपनी सेनाको युद्ध करनेके लिये आज्ञा देवे। (३) अथवा " कुलगण" में युद्धका आरम्भ करे। (४) यदि पूर्वमें गुरु, दक्षिणमें कुज, पश्चिममें शुक्र और उत्तरमें वक्री बुध हों तो यह निज निज दिशाका नाश करते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

उदाहरण ।



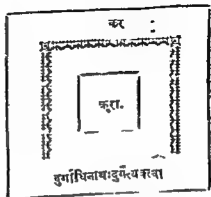


यत्र क्रूरस्तेन युक्तः शशी वा खण्डिस्तत्रैतत्पथे च प्रवेशः । क्रूराः स्तंभेर्क्षे यदांतस्तदानीं दुर्गं मुक्त्वा यांति दुर्गाधिनाथः ॥ ६५ ॥

यत्र प्राच्यादिदुर्गरेखास्थले क्रूरग्रहस्तेन ग्रहेण क्रूरेण युक्तः शशी चन्द्रो वा तत्र दुर्गे खंडिः पतेत् । एतस्य क्रूरस्य मार्गे बाह्यसैन्यप्रवेशो दुर्गे भवेत् । यदा क्रूराः स्तंभनक्षत्रे अन्तर्मध्ये स्युस्तदानीं दुर्गाधिनाथो ग्रहवशात् तद्दुर्गं त्यक्त्वा याति ततः पलायत इत्यर्थः ॥ ६५ ॥

कोटपर जिस जगह क्रूरग्रह हो, अथवा जिस जगह क्रूरयुक्त चंद्रमा हो तो (१) उसी जगहसे कोट खंडित होताहै । अतःउसी मार्गसे प्रवेशहोगा और यदि क्रूरग्रह स्तंभके नक्षत्रोंमें भीतर हों तो (२) दुर्गाधिनाथ किलेको छोड़कर भागजाता है ॥ ६५ ॥

उदाहरण ।

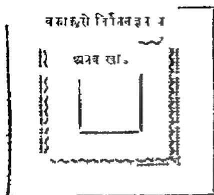



निर्गत्यर्क्षे बाह्यगे वक्रितश्चेत् क्रूरः खंडि निश्चितं तत्र कुर्यात । वप्रस्थोतंहन्ति मध्यं प्रवेशर्क्षे वक्री चेद्धन्ति बाह्यस्थसैन्यम् ॥ ६६ ॥

निर्गत्यर्क्षे निर्गमनक्षत्रे बाह्यगे बाह्यावर्तमाने निर्गमनक्षत्रे वक्री क्रूरग्रहो यदि स्यात् तत्र स्थाने निश्चितं खंडि कोटभंग कुर्यात् । वप्रस्थः कोटस्थो वक्री क्रूरश्चेद्भवति तदा अतः कोटमध्यं हन्ति नश्यति । मध्ये कोटमध्ये प्रवेशर्क्षे प्रवेशनक्षत्रे चेद्वक्री क्रूरस्तदा बाह्यस्थसैन्यं यायिसैन्यं हन्ति ॥ ६६ ॥

यदि बाहरके निर्गम नक्षत्रपर वक्री क्रूरग्रह हों तो उसी जगहसे कोटको खण्डित करते हैं । (१) और यदि कोटपर वक्री क्रूरग्रह हों तो कोटके भीतरवालोंका नाश करते हैं । (२) और जो कोटके भीतर प्रवेशके नक्षत्रोंपर वक्री क्रूरग्रह हों तो बाहरवाली सेनाका (३) नाश करते हैं ॥ ६६ ॥

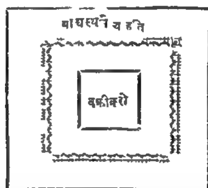
(१)



(२)



(३)



दुर्गे तदीशभजयोरिति कोटयोस्तु भगं चार्थे
दिशिं तत्र लगंतु बाह्याः। आभ्यंतरां बलपभोत्थित-
चक्रदोषे सेनान्यमन्यमुपदिश्य दिशोप्यवंतु ॥ ६७॥

दुर्गस्य एतदीशस्य दुर्गेशस्य च ये भे तयोरैशान्यादौ लिखनेन इत्यमुना प्रकारेण उत्पन्ने कोटचक्रे तयोः प्रागुक्त-प्रकारेण भंग विचार्य यस्यां दिशि भंगसंभावना तस्यां

दिशि बाह्या यायिनो लगन्तु तत्र लग्नाश्च दुर्गं गृह्णंतु । आभ्यन्तरा दुर्गाधिपास्तु स्वबलपो यः सेनापतिस्तस्य यद्भं तत उत्थितो यः कोटचक्रदोषस्तस्मिञ्ज्ञाते अन्यसेनापतिम् उपदिश्य नाम-पूर्वकं कृत्वा दिशोऽपि दुर्गज्ञा अवन्तु रक्षन्तु । एतदुक्तं भवति-एतद्ग्रन्थकृतोक्तप्रकारेण यायिस्थायिनावुभावपि जयतः ॥ इति ॥ ६७ ॥

दुर्ग और दुर्गेश इन दोनोंके नामके नक्षत्रोंसे उपरोक्त रीत्यनुसार दो चक्र बनाकर उसी उपरोक्त क्रमानुसार कोटका भंग होना निश्चय करके उसी उसी जगहपर यायी (बाहरवाला) राजा अपनी सेनाको लगावे तो किला टूटजाता है । और इसीप्रकार स्थायी (भीतरवाला) राजा अपने सेनापतिके नक्षत्रसे विचार कर देखे और किलेका भंग होनाही प्राप्त हो तो उस सेनापतिको बदलकर दूसरा सेनापति नियत करे और जिस दिशामें किलेका भंगआवे उस दिशाकी रक्षा करै॥६७॥

इति समरसारे×कोटचक्रप्रकरणम् ।

× " अथातः संप्रवक्ष्यामि कोटचक्रस्य निर्णयम् । स्तोकारिः कुरुते यत्र भूरिसैन्यपराभवम् ॥ १ ॥ यस्याश्रयबलादेव राज्यं कुर्वंति भूतले । विग्रहं चतुराशासु सीमास्थैः शत्रुभिः सह ॥ २ ॥ विषम दुर्गम घोर चक्र भीतिभयावहम् । कपिशीर्षैस्तु शोभाढ्य रौद्राट्टालकमण्डितम् ॥ ३ ॥ प्रतोली यस्य काला स्यात्परिखा कालरूपिणी । रणयंत्रं हताटोपं डिङ्कुलीयन्त्रयंत्रितम् ॥ ४ ॥ सुशालैर्मुद्गरैः पाशः कुन्तप्रासैर्धनुः शरैः । संयुतैः सुभटैः शूरैरिति दुर्गं समादिशेत् ॥ ५ ॥ (इन वाक्योंसे विदित होता है, प्राचीन कालमें कैसे कोट बनाये जातेथे । सन्तु) । उपरोक्तचक्रोक्तशुभफलमाह-" बुधजीवेन्दुशुक्राश्च यदा सौम्यग्रहा मताः । शन्यर्कराहुनाहेयाः केतुः क्रूरग्रहा मताः ॥ १ ॥ क्रूरैर्भंगो जयः सौम्यैर्निर्धारितमफलं मतम् । f

सर्वतोभद्रचक्रमाह ।

पूर्वोदीचीर्लिखालीर्नयनयगणिताः कंद्रकोष्ठेष्वथैशात्कोणेतोयस्वरान्वह्न्युडुतं इहं दिगालीषु भान्यंतरा तुं । नारीवर्णान्पुरोक्तानवकहडमुखानंतरास्माद्वृषादीन् खेटाचसंबंधिवारैः सह लिख चं तिथीन् मध्यतो नंदिकादीन् ॥ ६८॥ ऐन्द्र्यादि मध्यभचतुष्कवेधतो वेधमादिशेत्क्रमशः । घङछां पणठा धफढां थझञमिति सर्वतोभद्रम् ॥ ६९ ॥

नय १० नय १० गणिता दशदशगणिताः पूर्वोदीचीः पूर्वाश्च उदीच्यश्च पूर्वोदीच्यः ताः पूर्वोदीचीः पूर्वोत्तराः आलीः पंक्तीर्लिख । अथानंतरं कंद ८१ कोष्ठेषु एकाशीतिकोष्ठेषु ईशात् ईशकोणतः कर्णैः कर्णमार्गैः तोय १६ स्वरान् षोडशस्वरान् अकाराद्याँल्लिखेत् । अन्तरा मध्ये वह्न्युडुवः कृत्तिकादितः सप्त सप्त नक्षत्राणि दिगालिषु दिक्पंक्तिषु पूर्वादिदिक्षु लिखेत् । पुनः पूर्वोक्तान् पूर्वोक्तनारी २० वर्णान् विंशतिवर्णान् अवकहडमुखान् अस्मात् स्थानात्

—उच्चते शुद्ध कोटचक्रे स्वरोदयी ॥ २ ॥ बाह्यभे मध्यमेतस्याः क्रूरा हानिकरा मताः । बाह्यभे मध्यभे तस्याः सौम्या विजयमादिशेत् ॥ ३ ॥ दुर्गमध्ये गते सूर्ये जलदोषः प्रजायते । चंद्रे भगः कुजे दाहो बुधे बुद्धिबला नराः ॥ ४ ॥ वाक्पतौ दुर्गमध्यस्थे सुभिक्ष प्रचुर जलम् । चलचित्तनराः शुक्रे मृत्युरोगौ शनैश्चरे ॥ ५ ॥ राहौ मध्यगते दुर्गे भेदभङ्गो महद्भयम् ॥ केतौ मध्यगते तत्र विपदानं गदाधिपे ॥ ६ ॥ एवं कोटबाह्येपि ज्ञेयम् ॥

अधः अन्तरा मध्ये लिखेत् । चतुर्दिक्षु व सव्येनोच्यते । पूर्वस्यां दिशि सप्तसु कोष्ठेषु कृत्तिकादीनि सप्तनक्षत्राणि लेख्यानि। तदधः पंचसु कोष्ठेषु अवकहडान् लिखेत्। पुनः दक्षिणस्यां दिशि मघादीनि सप्तनक्षत्रानि लेख्यानि । तदधः पंचसु कोष्ठेषु मटपरता लेख्याः । पुनः पश्चिमायां दिशि सप्तसु कोष्ठेषु अनुराधातः सप्त नक्षत्राणि लेख्यानि । तदुपरि नयभजखा लेख्याः पुनरुत्तरस्यांदिशि धनिष्ठातः सप्त नक्षत्राणि लेख्यानि । तदुपरि गशदचला लेख्याः । तदंतरा (मध्ये) वृषादीनि त्रीणि, सिंहादीनि त्रीणि, वृश्चिकादीनि त्रीणि, कुंभादीनि त्रीणि,पूर्वादिदिक्षु लिखेत् । पुनः मध्यतः नन्दादितिथीन् लिखेत् । अंकै सह खेटाचत्सम्बन्धिवारैः सह खेटानां अचः स्वरास्तत्सम्बन्धिनो ये वारास्तैः सह तिथीन् लिखेत् । रविभौमयोः अकारः स्वरस्तस्य वारौ रविभौमौ नंदायां लेख्यौ । बुधचन्द्रयोः इकारस्तत्सम्बन्धिनौ वारौ बुधचंद्रौ भद्रायां लेख्यौ । गुरोः स्वर उकारस्तस्माद्गुरुर्जयायां लेख्यः । शुक्रस्य एकारस्तस्माच्छुक्रो रिक्तायां लेख्यः ॥ ६८ ॥ ऐन्द्र्यादिमध्ये यद्भचतुष्कं नक्षत्रचतुष्टयं तस्य वेधतः क्रमात् घङछां, पणठां, धफढां, थझञां वर्णानां वेधमादिशेत् । तदेवाह—आर्द्रावेधे सति घङछा विद्ध्यन्ते, हस्तवेधे पणठा विद्ध्यन्ते, पूर्वाषाढावेधे धफढा विद्ध्यन्ते, उत्तराभाद्रपदावेधे थझञा विध्यन्ते इति सर्वतोभद्रं वेधकृत् ज्ञेयम् ॥ ६९ ॥

पूर्वसे और उत्तरसे आरंभ करके दश दश रेखा खींचनेसे ८१ कोठे बन जाते हैं। उन कोठोंमें ईशान कोणसे आदि लेकर कोणों कोणोंके कोठाम 'अआइई' आदि सोलह स्वर लिखे। और ऊपर ऊपरकी चौतरफकी दिक्पंक्तियोंके जो सात सात कोठे हैं उनमे कृत्तिकादि अट्ठाईस नक्षत्र लिखे। इनके नीचेके चौतर्फके पांच पांच कोठोंमें उपरोक्त अव-कहड-मटपरत-नयभजख-गसदचल-यह वीस वर्ण लिखे। और इनके नीचे जो तीन तीन कोठे हैं उनमें वृषादि बारह राशि और ग्रह लिखे। इनके नीचे जो एकएक कोठे हैं उनमें स्वर-संबंधी वारों सहित नन्दादि तिथि लिखे॥ ६८॥ और इसके अतिरिक्त पूर्वादि दिशाओंमें जो बीच बीचके भचतुष्क हैं उनमें क्रमसे पूर्वकेमें घङछ, दक्षिणकेमें षणठ, पश्चिमकेमें धफढ और उत्तरकेमें थझञ लिखे तो वेधोपयुक्त नीचे लिखेअनुसार " सर्वतोभद्रचक्र " बन जाता है॥ ६९॥

प्रथमाद्यभस्थखेटो विध्येत्कोणस्थितानचश्चतुरः।
तिथिमपि पूर्णां न शुभः क्रूरंजवेधःशुभःशुभंजः॥७०॥

प्रथमाद्यभस्थखेटः कोणस्थितान् चतुरः अचः विध्येत्। यथेशान्यां प्रथमं नक्षत्रं भरणी तदग्रभं कृत्तिकास्थो ग्रहः ईशानकोणस्थान्अ,उ,लृ,ओ स्वरान् पूर्णा तिथींश्च विद्धयेत्। आग्नेय्याम् आर्द्रामघास्थो ग्रहः आग्नेयस्थान् आ, ऊ, लॄ, औ स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्धयेत्। नैर्ऋत्यां विशाखानुराधास्थो ग्रहः नर्ऋतिस्थान् इ, ऋ, ए, अं स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्धयेत्। वायव्यां श्रवणधनिष्ठास्थो ग्रहः वायव्यस्थान् ई, ॠ ऐ, अः स्वरान् पूर्णातिथींश्च विद्धयेत्। तत्र क्रूरवेधः न शुभः, शुभकृतवेधस्तु शुभदः॥ ७०॥

कोणस्थ प्रथमनक्षत्र–और अग्र्य (आगेका) भ नक्षत्र इन दोनों नक्षत्रोंपर कोई ग्रह स्थित हो तो कोणस्थ चारों स्वरोंको तथा पूर्णा तिथिको वेधताहै । यथा–ईशान कोणमें प्रथम नक्षत्र भरणी और अग्रभ कृत्तिकापर कोई ग्रह हो तो उस कोणके अ, उ, ऌ, ओ इन चारो स्वरोंको एवं पूर्णा तिथिको वेधता है । अग्निकोणमें ऐसेही आर्द्रा, मघापर कोई ग्रह हो तो आ, ऊ, ॡ औ और पूर्णातिथिका वेधताहै । नैर्ऋत्यमें विशाखानुराधास्थ ग्रह इ, ऋ ए, अं सहित पूर्णको वेधता है और वायव्यमें श्रवणधनिष्ठास्थ ग्रह ई, ॠ, ऐ, अः इन स्वरोंको और पूर्णातिथिको वेधता है । यह वेध यदि क्रूर[१] ग्रहोंका हो तो अशुभ और सौम्य[२] ग्रहोंका हो तो शुभ होताहै ॥ ७० ॥

अ	कृ	रो	मृ	घङछ आ	पु	पु	श्ले	आ
भ	उ	अ	व	क	ह	ड	ऊ	म
अश्वि	ल	ऌ	वृष	मिथुन	कर्क	ॡ	म	पू
रे	च	मेष	ओ	नन्दा भृगु	औ	सिंह	ट	उ
उ	द	मीन	रिक्ता मं	पूर्णा श	भद्रा चं बु	कन्या	प	ह
पू	श	कुम्भ	अः	जया गु	अं	तुल	र	चि
श	ग	ऐ	मकर	धन	वृश्चि	ए	त	स्वा
ध	ॠ	ख	ज	भ	य	न	ऋ	वि
ई	श्र	अभि	उ	पू धफढ	मू	ज्ये	अनु	इ

१ शन्यर्कराहुकेतवः क्रूराः । २ सौम्याः शुभाः । क्रूरयुतो बुध क्षीणचन्द्रोपि क्रूरो ॥ ३ यदि इस चक्रको "सर्वतोभद्रचक्र" वा "सर्वतोदीपकचक्र" कहा जाय

वक्रशीघ्रग्रहवेधमाह ।

वक्री दक्षं कर्णगत्यैवार्थं वामं शीघ्रो विध्येदीक्षतेऽग्रे समस्तु । नित्यं वक्रौ राहुकेतू इनेन्दू शीघ्रौ नित्यं दृग्व्यधौ तुल्यरूपौ ॥ ७१ ॥

वक्री शुभोऽशुभो वा कर्णगत्या कोणरीत्या दक्षं स्वपश्चाद्भागं विध्येत् । वक्रगतित्वं च सूर्यः स्वस्थानात्पंचमे षष्ठे वा स्थाने स्यात् । अथ शीघ्रगतिग्रहो वामं स्वाग्रिमभागं कोण रीत्यैव विध्येत् । शीघ्रगतित्वं चार्के द्वितीयस्थानगे समः समगतिस्तु ग्रहः अग्रे स्वसम्मुखे नेक्षते । अतः सम्मुख एव तद्दृष्टरूपो वेधः । अथ नियतशीघ्रग्रहानाह-नित्यमित्यर्द्धेन । राहुकेतू नित्यं सर्वकाले वक्रावतोऽनयोर्दक्ष एव कर्णगत्या वेधः । रवीन्दू नित्यं शीघ्रगती अतोऽनयोश्च वामवेधः । दृग्व्यधौ दृष्टिवेधौ तुल्यरूपौ सर्वकाले समानफलावेव नान्यथा भवतः ॥ ७१ ॥

वक्री ग्रह दक्षिण कर्णगति (कानकी तर्फ होकर तिर्छी दृष्टि) से और शीघ्रगति ग्रह वामकर्णगतिसे वेधता है और सम (न वक्री न शीघ्र) ग्रह सम्मुख वेधता है ।—राहु केतु नित्य ही वक्री रहते हैं और सूर्य चंद्र नित्यही शीघ्र रहते हैं अतएव राहु केतु सदैव दक्षिण कर्णगतिसे और सूर्य चंद्रमा सदैव वाम कर्णगतिसे वेधते हैं ॥ ७१ ॥

उद्वेगार्थविनाशरोगमृतिदा विध्यंते एकादयो वर्णे हानिरुद्धौ भ्रमोऽचि तु रुजो विद्धे तिथौ भीरपि ।

—तो कोई अत्युक्ति न होगी । क्योंकि इसका सघटन अट्ठाईसों नक्षत्रोंसे हुआ है और संसारके यावन्मात्र पदार्थोंके नामाक्षर अट्ठाईसों नक्षत्रोंके अन्तर्गत हैं, अत नक्षत्रवेधानुसार वस्तुमात्रका क्षयोद्भव विदित हो सकता है।

राशौ विघ्नततिश्च पंचसु मृतिर्विध्येन्ज्ञ इंज्यः सितः ।
प्रज्ञां सर्वसुखं रतिं विदधते वक्रा अतीष्टा इमे॥७२॥

एकादयो ग्रहा विध्यन्त उद्वेगार्थविनाशरोगमृतिदा भवन्ति। एकपापग्रहविद्धे नरे उद्वेगः, द्विग्रहवेधेनार्थविनाशो द्रव्यहानिः, त्रिग्रहवेधेन रोगः, चतुर्ग्रहवेधेन मरणं भवति । वर्णे अक्षरे पापग्रहविद्धेन हानिःद्रव्यहानिःबलहानिःपक्षहानिर्वा,-।उडौ नक्षत्रे पापविद्धे भ्रमः चित्तभ्रमणं भवेत् । अचि स्वरे पापविद्धे रुजः रोगो भवति । तिथौ पापविद्धे भीः भयं स्यात् । राशौ पापविद्धे विघ्नततिः विघ्नपरंपरा भवति । पंचसु वर्णनक्षत्रस्वरतिथिराशिषु एककाले विद्धेषु मृतिर्मरणं भवति । ज्ञः बुधो वेधेन प्रज्ञां बुद्धिं ददाति, ईज्यो गुरुर्वेधेन सर्वसुखं ददाति, सितः शुक्रो वेधेन रतिं प्रीतिं ददाति । इमे शुभग्रहाश्चेद्वक्राः विध्यन्ते तर्हि अतीष्टाः अत्यन्तश्रेष्ठाः ॥ ७२ ॥

यदि एक पापग्रह वेधता हो तो उद्वेग, दो वेधते हों तो अर्थनाश, तीन वेधते हों तो रोग और चारग्रह वेधते हों तो मृत्यु होती है । वर्ण (नामाक्षर) का वेध हो तो द्रव्यनाश,नक्षत्रवेध हो तो भ्रम,स्वरवेध हो तो रोग, तिथिवेध हो तो भय और राशिवेध हो तो विघ्नपर विघ्न होता है और यदि इन पांचोंकाही वेध हो तो मृत्यु होती है + । यदि वेधकर्ता बुध हो तो बुद्धि, गुरु हो तो सर्वसुख और शुक्र हो तो

+ इस वेधसे मनुष्योंका सुख दुःख, हानि, लाभ, रोगका ह्रास, वृद्धि और यावन्मात्र वस्तु पदार्थोंका क्षय उत्पत्ति एवं व्यापारिक वस्तुओंका महर्घ समर्घ (तेजी मंदी) आदि सब कुछ देखा जा सकता है । इसीसे यह ' संसारचक्र ' कहा जा सकता है ।

रति (स्त्रीसंभोग) की प्राप्ति होती है और यदि यह वक्री हों तो अत्यन्त अच्छे होते हैं ॥ ७२ ॥

क्रूरा वक्रेऽतीव दुष्टा रविः स्याद्यद्राशौ सा दिक्सदिश्यास्तमेति । प्राच्या ईशाशास्थिताश्च क्रमोऽयं सर्वाशासु ज्ञायतां बुद्धिमद्भिः ॥ ७३ ॥

क्रूरा वक्रे पापग्रहाः वक्रिणः अतीव दुष्टाः स्युः । रविर्यस्मिन्राशौ स्यात् यद्दिग्लिखितेषु राशिषु स्यात् । यथा प्राच्यां वृषमिथुनकर्कटा लिखितास्तेषां मध्ये चेदेकस्मिन्राशौ तिष्ठेत्तदा सा प्राच्यादिदिक् सदिश्या ' दिशि भवं दिश्यं ' ' नक्षत्र, स्वर, वर्ण, राशि, तिथिवारादि तेन सह वर्तत इति ' सदिश्या आशा नक्षत्राद्यैर्युक्ता सा दिगस्तगा स्यादित्यर्थः । विदिक्षु ये स्वराद्यास्ते कथमस्तगता ज्ञेया इत्यपेक्षायां विदिशां दिक्ष्वेवांतर्भावमाह—प्राच्या इति । ईशाशा ऐशानी तत्र स्थिताः अत्र प्राच्याः प्राचीदिग्गता ज्ञेयाः । आग्नेयीस्था दक्षिणदिग्गताः ज्ञेयाः । एवं नैर्ऋतिस्थाः प्रतीचीगताः । वायव्यस्था उदीचीगता ज्ञेयाः ॥ ७३ ॥

क्रूरग्रह वक्री होकर वेध करते हों तो अत्यन्त दुष्ट होते हैं ।- सूर्य वृषादि जिस राशिपर स्थित हों और वह राशि जिस दिशामें हो तो उस राशिके तर्फकी दिशा एवं स्वर, वर्ण, नक्षत्रादि सब अस्त होते हैं । (१) और कोणस्थ स्वरवर्णादि उक्त दिशाके साथ अस्त होते हैं । यथा ईशानकोणस्थ पूर्वमें, अग्निकोणस्थ दक्षिणमें, नैर्ऋत्यकोणस्थ पश्चिममें और वायुकोणस्थ उत्तरमें मानकर अस्त समझे जाते हैं । (२) ॥ ७३ ॥

उदाहरण ।

यथा सूर्य वृषराशिपर है तो पूर्वदिशाके स्वर वर्ण नक्षत्र राश्यादि सब अस्त हैं । अतः अस्त दिशाका फलभी नीचे लिखे अनुसार होता है ॥ ७३ ॥

अस्ताशास्थैर्जाद्यैः क्रूरव्यधवशात्फलं वाच्यम् ।
उदिताशास्थैः सौम्यव्यध इव फलमादिशेच्छ्रेष्ठम् ॥ ७४ ॥

अस्ताशा सूर्याक्रान्ता दिक् तस्यां स्थितैरजाद्यैः स्वरवर्णर्क्षतिथिवारैः क्रूरग्रहवेधवद्दुष्टफलं वाच्यम् । उदिताशा सूर्याक्रान्तदिग्व्यतिरिक्ता तत्र स्थितैः स्वराद्यैः सौम्यग्रहवच्छ्रेष्ठं फलम् अस्ताशास्थाः सत्फला अप्यसत्फलाः । उदिताशास्थास्त्वसत्फला अपि सत्फला इत्यर्थः ॥ ७४ ॥

अस्त दिशामें स्थित स्वरादिकोंका क्रूरवेधकी भाँति नेष्टफल-और उदित दिशामें स्थित स्वरादिकोंका सौम्यवेधकी भांति श्रेष्ठ फल कहना चाहिये अर्थात् शुभ फल देनेवाले स्वर जो वर्णादिहैं वे यदि अस्त दिशामें हों तो अशुभ फल देतेहैं और अशुभ फल देनेवाले स्वरवर्णादि उदित दिशामें हों तो शुभ फल देते हैं ॥ ७४ ॥

हानी रुक्कलहोपि पीडिते इह स्याज्जन्मभेऽस्मान्नये
कर्मासिद्धिरथो भिदां चयमिते दृग्पक्षयैः स्यान्नये ।
गौरे देहरुजः शरे सुखहती राज्ञोथ देशोद्भुनि
क्षुण्णे जात्यभिषेकयो रपि तयोस्तत्तद्भयंनिर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

इह सर्वतोभद्रे जन्मनक्षत्रे पीडिते क्रूरग्रहविद्धे हानिर्द्रव्यादेः, रुक् रोगः, कलहो मित्राद्यैः, एतानि फलानि भवन्ति । अस्माज्जन्मभान्नये १० दशमर्क्षे पीडिते कर्मासिद्धिः कर्म यत्कर्तुमिष्टं तस्यासिद्धिः । अथो तत एव चय १६ मिते षोडश-

संख्याके विद्धे भिदाभेदः इष्टवर्गेण सह । जये १८ अष्टादशसंख्ये तु विद्धे द्रव्यक्षयः । गौरे २३ त्रयोविंशतितमे विद्धे देहरुजः । शरे २५ पंचविंशतिमे विद्धे सुखहतिः सुखनाशः ।

अथ राज्ञो देशोडुनि अवकहड़चक्रे यत्तु देशनक्षत्रं तस्मिन् विद्धे । तथा जात्यभिषेकयोः जातिः क्षत्रियत्वादिः तद्धं अवकहड़चक्रजम् । एतच्चक्रजमेव यद्राजाभिषेककालीननाम-नक्षत्रमेतदभिषेकभम् । एतेषु विद्धेषु तत्सम्बन्धिनां देश-जाति-राज्यानां भयं निर्दिशेत् ॥ ७५ ॥

इस सर्वतोभद्रमें यदि जन्मनक्षत्र वेधा गया हो तो हानि, रोग, और क्लेश यह होते हैं । यदि जन्मर्क्षसे दशवां वेधित हो तो कर्मकी असिद्धि होती है । यदि जन्मनक्षत्रसे सोलहवां नक्षत्र वेधित हो तो भेद (परस्परभेद—अविश्वास) होताहै । यदि अठारहवां वेधित हो तो द्रव्य-क्षय होता है । तेईसवां वेधित हो तो देहमें रोग होताहै और पच्चीसवां नक्षत्र वेधित हो तो सुखहानि होती है ।

यदि राजाके देशका अथवा राज्याभिषेकका वा किसी जातिका नक्षत्र विद्ध हो तो उस उस देश, राज्य वा जातिको भय होता है । यह सब नाम नक्षत्र पूर्वोक्त अवकहडचक्रसे देखलेने चाहिये ॥ ७५ ॥

इति समरसारे सर्वतोभद्रप्रकरणम् ❀ ।

❀ विख्यातं सर्वतोभद्रं चक्रं त्रैलोक्यदीपकम् । यस्मिन्नृक्षे स्थितः खेटस्ततो वेधत्रयं भवेत् । ग्रहदृष्टिवशेनात्र वामसम्मुखदक्षिणे ॥ १ ॥ भुक्तं भोग्यं तथा क्रान्तं विद्धं क्रूरग्रहेण भम् । शुभाशुभेषु कार्येषु वर्जनीयं प्रयत्नतः ॥ २ ॥ सूर्यमुक्ता उदीयन्ते सूर्यप्रस्तास्तगामिनः । ग्रहा द्वितीयगे सूर्ये स्फुरद्बिंबाः कुजादयः ॥ ३ ॥ समा तृतीयगे ज्ञेया मन्दा भानौ चतुर्थगे । वक्राः स्यात्पंचपष्ठेऽर्के स्वतिवक्राऽष्ट-सप्तमे ॥ ४ ॥ नवमे दशमे भानौ जायते कुटिला गतिः । द्वादशैकादशे सूर्ये भजते शीघ्रतां पुनः ॥ ५ ॥ सद्यस्ता पुनर्लोके तत्रत्यर्कगता ग्रहाः । स्वर्णादि-

ऋणधनशोधनमाह ।

साध्यांको अकठबादयस्ततैत्तुं नगभूभातुनिन्नग दाता ।
रुरुमननरयनभवगाःसाधके ऋणमधिकशेषतो दाता७६

साध्यस्य सम्बन्धयाह्वस्य दासदासीशिष्यादेर्नामसम्बन्धिनोंकाः साध्यंते । तत्रैवं–त६, त६, तुं६, न०, ग३, भू ४, भा४,तु०,निं०,न०,गा ३, अकठबादयस्तत्सम्बन्धिनश्चाङ्काः साध्यनामाक्षरस्वरसम्बन्धिन एकीकृता दा ८ ता अष्टभक्ता यदि शेषांकः साधकनामाक्षरांकसंख्याष्टभागावशिष्टांकादूनस्तदा साध्यस्य साधकः ऋणप्रदः । अधिके तु गृह्णाति । साधकः साध्याहणमिति भावः । साधकांस्तु तत्र वर्गास्त एव तदंकास्तु रु२, रु२, म५, न०, न०, र२, य१, न०, भ४, व४,गाः३, एते एकादश । अत्रापि साधकनामाक्षरसम्बन्ध्यंका एकीकृता अष्टभक्ताः साध्याङ्कादधिकशेषे साध्यस्य ऋणप्रदः साधकोऽल्पे तु गृह्णाति ॥ ७६ ॥

ग्यारह कोठोंमें त ६–त ६–तुं ६–न०–ग ३–भू ४–भा ४–तु०–नि०–न०–गा ३ यह साध्यके अंक लिखकर इनके नीचे अकठबादि अर्थात् ' अआ इईउऊएऐओऔअंअः कखगघङ चछजझञ टठडढण तथदधन पफबभम यरलव शषसह–यह लिखे और ऐसेही र २–र २–म५–न०–न०–र २–य १–न०–भ ४–व ४गा–३–यह साधकके अंक

—स्वरो द्वौ द्वावेकचेपे द्वयोर्व्यंयः । स्वगुणात्मनो चेयथानुस्वारविसर्गयोः ॥ ६ ॥ वर्गो प्रतो परो चैव ज्ञेयो द्वयो परस्परम् । एवेन द्विनयं ज्ञेय शुभाशुभलगध्यये ॥ ७ ॥ प्रश्नकाले भवेद्विद्व यत्रस्म स्फुरत्स्वरः । तद्दृष्ट शोभन सौम्यैर्निर्धोनिष्फल नरम् ॥ ८ ॥ मंडल नागरं ग्रामो दुर्ग देवालयः पुरम् । स्फुरेत्नयतो विद्व विनश्यति न संशय. ॥ ९ ॥ सेले भाडे रसो धान्य गजाश्वादि चतुष्पदम् । सर्वे दहदंता यानि यत्र स्फुरो व्यवस्थित. ॥ १० ॥

लिखकर इनके नीचेभी वही अकठवादि लिखे तो 'ऋणधन' चक्र बनजाता है। इस चक्रसे साध्य और साधकके नामाक्षरोंकी संख्या लेकर उसमें आठका भाग दे तो जिसका शेष अधिक बचे वह ऋणप्रद होता है ॥ ७६ ॥

उदाहरण ।

जैसे-'राम सीता' का धनर्ण देखना है तो यहां राम साधक और, सीता साध्य है। अतएव साधक रामनामके र०-आ २-म ५-अ २ इन अंकोंका योग ९ है और साध्य-सीतानामके स०-ई०-त ३-आ ६-अंकोंका योग ९ है। इन ९। ९ दोनोंमें आठको भाग देनेसे १। १ बचता है। अतएव राम-सीता-दोनों समान हैं।

साधक वह कहा जाता है जो किसी व्यक्तिविशेष वा वस्तुविशेषसे अपना कार्य साधन करे और साध्य वह कहाजाता है जो साधकके कार्यविशेषमें उपयुक्त हो यथा स्वामी साधक, सेवक साध्य,-पति साधक, पत्नी साध्य -गुरु साधक, शिष्य साध्य इत्यादि इत्यादि ॥७६॥

ऋणधनसाधनचक्रम् ।

नराक्षरा	न ६	त ६	न ६	न ०	ग ३	भू ४	भा ४	तु ८	नि ०	नि ०	गा ३
	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ए	ओ	ओ	अं
	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
साध्याक्षरा०	हे ७	हे २	म ५	न ०	न ०	र ७	ध १	न ०	ज ४	व ४	गा ३

आतुरसाध्यासाध्यादिप्रश्ने तज्ज्ञानमाह ।

कोष्ठाद्द्वितोऽक्षुं च विसर्गनपुंसकोनेष्वंकास्तुलारिभमतीभृगुकानकाः स्युः । दूतातुराह्वयतदैक्यदभक्तशेषे जीवेद्द्वयो समेऽधिकेम्रियेते समाने ॥ ७७ ॥

कात् ककारात्-ठात् ठकारात्-बात् बकारात्-वर्णा लेख्याः । विसर्गनपुंसकोनेषु-विसर्गः अः, नपुंसकाः ऋॠऌॡ एतैः व्यतिरिक्तेषु, अधः कठबादयो वर्णा लेख्या वर्णोपरि तुद- ला३-रि २-भ ४-ल ७-ती ६-भृ ४-गु ३-का १-न ०- काः १-अंकाः स्युः लेख्याः भवन्ति । दूतः पृच्छकः आतुरो रोगी तयोः आह्वयं नाम तस्य अंकैक्यं पृथक् पृथक् कर्तव्यम् द ८ भक्तम् अष्टभक्तं, दूतांकशेषाद्रदिनो रोगिणोंके समधिके अधिके सति रोगी जीवेत् । दूतांकशेषाद्रोगिणोंके समे हीने च सति रोगी म्रियते ॥ ७७ ॥

विसर्ग (अः) और नपुंसक (ऋॠऌॡ) इनके अतिरिक्त और जो-अकठबादि स्वर व्यंजन हैं इनको तु ६-ला ३-रि २-भ ४-स ७-ती ६-भृ ४-गु ३-का १-न०-का १-इनके नीचे लिखे तो " आतुरसःध्यासाध्यज्ञानचक्र " बन जाता है । इसमें दूत (प्रच्छक) और आतुर (रोगी) के नामाक्षरोंकी संख्या लेकर उनमें पृथक् पृथक् आठका भाग देनेसे दूतके शेषसे रोगीका शेष सम वा न्यून हो तो रोगी मरजाता है ॥ ७७ ॥

उदाहरण।

यथा देवदत्त तो रोगी है और इसके अच्छे होने न होनेके विषयमें यज्ञदत्त पूंछता है तो-रोगी देवदत्तका नामांक (द ४-ए४-व ४-अ ६-द ४-अ ६-त् ७-त७-अ ६-) संख्यायोग ४८ । और दूत वा प्रच्छक यज्ञदत्तका नामांक-(य ४-अ ६-ग ३ञ०-अ ६ द४-अ ६-त् ७-त ७-अ ६-) संख्यायोग ४९ है । इनमें आठका भाग दिया तो दूत०- । रोगी १-शेष रहा । यह दूतके शेषसे रोगीका शेष अधिक है अतएव रोगी देवदत्त जीवेगा ॥ ७७ ॥

आतुरसाध्यासाध्यज्ञानचक्रम् ।										
तु ६	ला ३	रि २	भ ४	स ७	ती ६	म ४	गु ३	रा १	न०	का ९
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ए	ओ	औ	ऋ
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह

रुग्णप्रश्न एव विशेषमाह ।

प्रश्नाज्झलां च प्रमितिः कयुक्ता भूयो रनिघ्नी लहृतार्थशेषे । के जीवितं खे निरुजो मृतिर्न भवेच्च तिथ्यां मरणाभिधायाम् ॥ ७८ ॥

प्रश्नस्य प्रश्नवाच्यस्य दूतोक्तस्य येऽचो हलश्च तेषां प्रमितिः प्रमाणं के १ नैकेन युता । भूयः पुनः रे २ ण द्वाभ्यां गुणिता । ले ३ न त्रिभिर्भक्ता तच्छेषं च यदैकं तदा रुग्णस्य जीवितं निर्दिशेत् । द्वयोस्तु शिष्टयोर्नितरां रोगं विनिर्दिशेत् । ने० शून्ये तु शेषे तन्मरणं वदेत् । तदपि वर्णस्वरवशाद्या मृततिथिस्तस्यामेव वदेत् ॥ ७८ ॥

प्रश्नके समय प्रच्छक जो कुछ कहे उस कथनके अच् और हल्की उपरोक्तक्रमानुसार जितनी संख्या हो उसमें १ मिलाकर दोसे गुणादे और तीनका भागदे यदि १ शेष बचे तो रोगी जीता है । २ बचे तो रोग बढता है । और ० बचे तो रोगी मरजाता है । ऐसे ही वर्णस्वरके वशसे मृततिथिका विधान करे । अर्थात् वर्णस्वरसे जो मृतस्वर हो उसी स्वरकी तिथिको मरणतिथि जाने ॥ ७८ ॥

उदाहरण ।

जैसे देवदत्तने-यज्ञदत्तके विषयमें कहा कि "यज्ञदत्त कब अच्छा होगा" तो इस कथनके अक्षरोंके संख्यां क्रयोग९९ में एकयुक्त १०० करके दोसे गुणा किया तो २०० हुए। इनमें तीनका भाग दिया तो २ शेष रहा । अतएव-यज्ञदत्तके रोग बढ़रहाहै ।

यदि यह जानना हो कि, यज्ञदत्त किस तिथिको मरेगा तो "मर णाभिधायां" के अनुसार यज्ञदत्तका वर्णस्वर उकार है और उकारसे मृत्युस्वर इकार है अतएव इकारकी जया ३ । ८ । १३ तिथि होनेसे यज्ञदत्त जया तिथिमें मरेगा । इसी प्रकार मृतपुरुषोंकी भी मृत तिथि विदित होतीहै ॥ ७८ ॥

इति समरसारे ऋणधनातुरसाध्यासाध्यादिप्रकरणम् ।

भविष्यदर्थसूचकं छायानरं पश्यति तत्प्रकारमाह ।

प्रातः पृष्ठगते रवावनिमिषं छायां गले स्वां चिरं दृष्ट्वोर्द्ध्वं नयनेन यत्सिततरं छायानरं पश्यति । तत्क- र्णांसकरास्यपार्श्वहृदयाभावेक्षणेऽर्काश्वदिग्भूरामाक्षि- समाः शिरोविगमतो मासांस्तु षट् जीवति ॥ ७९ ॥

प्रातःकाले मेघाद्यैरनाच्छादिते रवौ पृष्ठगते अनावृत्ते स्थले स्थित्वाऽर्कं पृष्ठभागे कृत्वा प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन् । अनिमिषं- निमेषशून्ये चक्षुषी कुर्वन्सन् स्वां स्वकीयां चिरं चिरकालं गल स्थले दृष्ट्वैव तादृशी अनिमिषे एवनेत्रे ऊर्ध्वप्रदेशं नयन । सित- तरम्-अतिशयेन श्वेतं छायानरं छायापुरुषं पश्यति । एवंप्रका- रेण शरदादिसितविमलरात्रिषु छायापुरुषो दृश्यते।एवं दृष्टे पुरुषे फलमाह-तदिति । तस्य छायानरस्य कर्णाभावदर्शने द्रष्टा अर्क- वर्षाणि द्वादशवर्षाणि जीवति। द्रष्टांसकरद्वयास्यपार्श्व हृदये

विना छायापुरुषदर्शने क्रमादायुर्वर्षाणि सप्त ७, दश१० एक१ त्रि ३, द्वि २ संख्यानि जीवतीति सम्बन्धः । शिरोविगमतः अशिरस्कच्छायापुरुषदर्शने षण्मासान् जीवतीति श्लोकार्थः । अत्र स्वसंकेतितवर्णलक्ष्यां संख्या परित्यज्य अर्कादिसंज्ञाग्रहो लोकप्रसिद्धिमाश्रित्य ॥ ७९ ॥

प्रातःकालके समय सूर्यको पीठदेके पश्चिमाभिमुख खड़ा होकर अनिमिष (पलक न मिलैं ऐसी) दृष्टिसे अपनी छायाको गलस्थलके पास बहुत देरतक देखे । फिर नेत्रोंको सहसा ऊँचे लेजाय अर्थात आकाशको देखे तो एक अत्यन्त सफेद छायाका पुरुष दीखता है।

उस छायापुरुषके यदि कान न दीखें तो बारह वर्षतक. अंस (कंधे) न दीखें तो सात वर्षतक, हाथ न दीखें तो दश वर्षतक, मुख न दीखे तो एक वर्षतक, पाश्र्व (पांशू) न दीखें तो तीन वर्षतक, हृदय न दीखे तो दो वर्षतक. और शिर न दीखे तो छः महीने पर्यंत छायापुरुषको देखनेवाला मनुष्य जीवित रहता है ॥७९॥

अत्रैव विशेषमाह ।

हृद्रंध्रदृष्टौ मुनिसंख्यमासान् द्विरहदृष्टौ तु मृतिस्तदैव । सम्पूर्णदृष्टौ तु न वर्षमध्ये रोगो मृतिर्नेति वदन्ति सत्यम् ॥ ८० ॥

छायापुरुषस्य हृदये चेद्रन्ध्रं दृश्यते तदा सप्तमासान् जीवति शरीरद्वयं चेद् दृश्यते छायापुंसः तदा तदानीमेव मरणं जानीयात् सम्पूर्णे तु छायापुरुषे दृष्टे वर्षमध्ये रोगो मरणं च न भवेदिति सत्यं ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

यदि उस छायापुरुषके हृदयमें छिद्र दीखे तो सात महीने पीछे और दो शरीर दीखें तो उसी समय मृत्यु होती है । यदि छायापुरुष सांगो-

पांग सम्पूर्ण दीखे तो एक वर्ष किसी प्रकारका रोग वा मृत्यु कुछ नहीं होता है । यह सत्य कथन है ॥ ८० ॥

छायापुरुषप्रसंगेन शकुनान्तरमाह ।

स्नातस्यं पूर्वं कर्णादेः शोषे प्रागुक्तवत्फलम् ।
सर्वांगार्द्रस्यं हृच्छोषे षण्मासाभ्यंन्तरे मृतिः ॥८१॥

स्नातस्य कृतस्नानमात्रस्य पुंसः कर्णादेः कर्णांसहस्तमुखपार्श्वहृदयादीनां प्रथमतः इतरांगेभ्यः पूर्वं शोषे पूर्वश्लोकोक्तं फलं योज्यम् । यथा कर्णशोषे द्वादश वर्षाणि, अंसशोषे सप्त वर्षाणि, हस्तशोषे दश वर्षाणि, मुखशोषे एकं वर्षं, पार्श्वशोषे त्रिवर्षाणि, हृदयशोषे युग्मवर्षाणि जीवनम् । सर्वांगार्द्रस्य हृच्छोषे हृदयस्थले प्रथमतः शोषणे षण्मासमध्ये तस्य पुंसः मरणं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥

स्नान करचुकनेपर यदि पहले कर्णादि सूखजाँय तो उपरोक्त तुल्य फल जानना अर्थात् सब शरीर तो भीगा रहे और कान पहलेही सूखजाँय तो बारह वर्ष, कंधे सूखजाँय तो सात वर्ष, हाथ सूखें तो दश वर्ष, मुख सूखे तो एक वर्ष, पार्श्व सूखें तो तीन वर्ष और हृदय सूखे तो वह मनुष्य दो वर्ष तक जीवित रहता है । और यदि केवल हृदयस्थल ही पहले सूखजाय तो छः महीनेके भीतर मृत्यु होजाती है ॥ ८१ ॥

अन्यदाह ।

हस्ते न्यस्ते शिरसि यदि न च्छिन्नदण्डोऽस्य दृष्टः
षण्मासान्तर्न मरणभयं संम्पुटे हस्तयोस्तु ।
न्यस्ते शीर्षे यदि च कदलीकोरकाभं तदैतेर्दृष्टं
नो भीस्तिरति सलिले चेत्स्वशेफो न मृत्युः ॥८२॥

शिरसि स्वकीये हस्ते न्यस्ते यदि छिन्नदण्डो न दृश्यते

र्विना छायापुरुषदर्शने क्रमादायुर्वर्षाणि सप्त ७, दश१० एक १ त्रि ३, द्वि २ संख्यानि जीवतीति सम्बन्धः। शिरोविगमतः, अशिरस्कच्छायापुरुषदर्शने षण्मासान् जीवतीति श्लोकार्थः। अत्र स्वसंकेतितवर्णलक्ष्यां संख्या परित्यज्य अर्कादिसंज्ञाग्रहो लोकप्रसिद्धिमाश्रित्य ॥ ७९ ॥

प्रातःकालके समय सूर्यको पीठदेके पश्चिमाभिमुख खड़ा होकर अनिमिष (पलक न मिलैं ऐसी) दृष्टिसे अपनी छायाको गलस्थलके पास बहुत देरतक देखे। फिर नेत्रोंको सहसा ऊँचे लेजाय अर्थात् आकाशको देखे तो एक अत्यन्त सफेद छायाका पुरुष दीखता है।

उस छायापुरुषके यदि कान न दीखें तो बारह वर्षतक, अंस (कंधे) न दीखें तो सात वर्षतक, हाथ न दीखें तो दश वर्षतक, मुख न दीखे तो एक वर्षतक, पाइँ (पांव) न दीखें तो तीन वर्षतक, हृदय न दीखे तो दो वर्षतक, और शिर न दीखे तो छः महीने पर्यंत छायापुरुषको देखनेवाला मनुष्य जीवित रहता है ॥७९॥

अत्रैव विशेषमाह।

हृद्रंध्रदृष्टौ मुनिसंख्यमासान् द्विधादृष्टौ तु मृतिस्तदैव। सम्पूर्णदृष्टौ तु न वर्षमध्ये रोगो मृतिर्नेति वदन्ति सत्यम् ॥ ८० ॥

छायापुरुषस्य हृदये चेद्रन्ध्रं दृश्यते तदा सप्तमासान् जीवति शरीरद्वयं चेद् दृश्यते छायापुंसः तदा तदानीमेव मरणं जानीयात् सम्पूर्णे तु छायापुरुषे दृष्टे वर्षमध्ये रोगो मरणं च न भवेदिति सत्यं ज्ञेयम् ॥ ८० ॥

यदि उस छायापुरुषके हृदयमें छिद्र दीखे तो सात महीने पीछे और दो शरीर दीखें तो उसी समय मृत्यु होती है। यदि छायापुरुष सांगो-

पांग सम्पूर्ण दीखे तो एक वर्ष किसी प्रकारका रोग वा मृत्यु कुछ नहीं होता है । यह सत्य कथन है ॥ ८० ॥

छायापुरुषप्रसंगेन शकुनान्तरमाह ।

स्नातस्य पूर्वं कर्णादेः शोषे प्रागुक्तवत्फलम् ।
सर्वांगार्द्रस्य हृच्छोषे षण्मासाभ्यन्तरे मृतिः ॥८१॥

स्नातस्य कृतस्नानमात्रस्य पुंसः कर्णादेः कर्णांसहस्तमुखपार्श्वहृदयादीनां प्रथमतः इतरांगेभ्यः पूर्वं शोषे पूर्वश्लोकोक्तं फलं योज्यम् । यथा कर्णशोषे द्वादश वर्षाणि, अंसशोषे सप्त वर्षाणि, हस्तशोषे दश वर्षाणि, मुखशोषे एकं वर्षं, पार्श्वशोषे त्रिवर्षाणि, हृदयशोषे युग्मवर्षाणि जीवनम् । सर्वांगार्द्रस्य हृच्छोषे हृदयस्थले प्रथमतः शोषणे षण्मासमध्ये तस्य पुंसः मरणं विनिर्दिशेत् ॥ ८१ ॥

स्नान करचुकनेपर यदि पहले कर्णादि सूखजाँय तो उपरोक्त तुल्य फल जानना अर्थात् सब शरीर तो भीगा रहे और कान पहलेही सूखजाँय तो बारह वर्ष, कंधे सूखजाँय तो सात वर्ष, हाथ सूखें तो दश वर्ष, मुख सूखे तो एक वर्ष, पार्श्व सूखें तो तीन वर्ष और हृदय सूखे तो वह मनुष्य दो वर्ष तक जीवित रहता है । और यदि केवल हृदयस्थल ही पहले सूखजाय तो छः महीनेके भीतर मृत्यु होजाती है ॥ ८१ ॥

अन्यदाह ।

हस्ते न्यस्ते शिरसि यदि न च्छिन्नदण्डोऽस्य दृष्टः
षण्मासान्तर्न मरणभयं संपुटे हस्तयोस्तु ।
न्यस्ते शीर्षे यदि च कदलीकोरकाभं तदंते दृष्टे
नो भीस्तरति सलिले चेत्स्वशोफो न मृत्युः ॥८२॥

शिरसि स्वकीये हस्ते न्यस्ते यदि छिन्नदण्डो न दृश्यते

तदा न मरणभयं भवेदिति ज्ञेयम् । अत्रैव प्रकारान्तरमाह-सम्पुट इति । हस्तयोस्तु सम्पुटे शीर्षे मूर्ध्नि न्यस्ते धृते सति तदन्तः तयोर्द्वयोः प्रकोष्ठयोरन्तरालं यदि कदलीकोरकाभं रम्भाकलिकातुल्यं चेद्दृष्टं तदा नो भीः मरणादेरिति शेषः । अन्यच्चाह-सलिले जले चेत्स्वशेफः प्रजननं स्वकीयं तरेन्न मज्जेत् तदा मृत्युर्न स्यादिति ज्ञेयम् ॥ ८२ ॥

यदि हाथको शिरपर लगानेसे हस्तदंड टूटाहुआ न दीखे तो छः महीनेके भीतर मृत्युका भय नहीं होता है। यदि दोनों हाथोंका सम्पुट बनाकर शिरपर लगानेसे सम्पुटकी पोलके भीतर केलाकी कोर(चमकदार लाल कली) जैसी दीखे तो मृत्युआदिका कुछ भय नहीं है। और यदि अपनी इन्द्री जलमें नहीं डूबे तो भी मृत्यु नहीं होती है ॥८२॥

उक्तशकुनानामुपयोगं स्तुतिं चाह ।

इमानि चिह्नानि विचार्य योद्धुं विनिश्चये स्वायुष एव यायात् । आहुर्हि मुख्यं शकुनं स्वदेहचिह्नानि बाह्यैः शकुनैः किमन्यैः ॥ ८३ ॥

इमानि प्रागुक्तानि चिह्नानि शरीरभवानि विचार्य स्वायुषः तत्तायां विनिश्चये एव योद्धुं शत्रुर्निर्गच्छेत् । न त्वल्पायुर्ज्ञाने कथमेभिः शकुनमात्रैः स्वायुर्निश्चय इत्याह-आहुरिति । हियतः कारणात्स्वदेहचिह्नानि मुख्यं शकुनमाहुः गर्गादिमुनयः । अत एभिरायुर्निश्चय इत्यर्थः । अन्यैः बाह्यैः काकशिवादिवाशितरूपैः शकुनैः किंचिद्विसंवादित्वात्किं प्रयोजनमित्यर्थः ॥८३॥

उपरोक्त चिह्नोंको विचारकर आयुष्यका निश्चय करके फिर युद्ध करना चाहिये। अपनी देहके चिह्नोंके शकुन ही मुख्य शकुन कहे है। बाहरके खग मृग आदिके अन्य शकुन क्या हैं ? ॥ ८३ ॥

इति समरसारे शकुनप्रकरणम् ।

ग्रन्थसमाप्तौ प्रचयगमनाय मंगलप्रयोक्तुः प्रशंसा-

पूर्वकमाशिषं प्रयुंक्त ।

सकलस्वरशास्त्रसारमेतत्परिसंक्षिप्य मया न्यगादि सर्वम् । गुरुभक्तिजुषोऽथ धर्मवृत्तेः स्फुरतादेतदभीप्सितार्थसिद्ध्यै ॥ ८४ ॥

सकलं समस्तं यत्स्वरशास्त्रम् ईशादिप्रणीतं तस्य सारम् अव्यभिचारादत्युपयोगाच्च गुरुत्वात्सारं संक्षिप्य सर्वं मयान्यगादि नाम यात्रांगादि उक्तम् । एतद् गुरुभक्तिजुषः गुरुभक्तस्य अथच धर्मवृत्तेः धर्मवर्तनं यस्याभीप्सितार्थसिद्ध्यै स्फुरतात् चमत्कुर्यादित्यर्थः ॥ ८४ ॥

यह सब स्वरशास्त्रोंका सार मैने संक्षेपसे सम्पूर्ण कहा है। यह सो गुरुभक्तियुक्त,धर्मवृत्तिवालोंके अभीप्सित सिद्ध करनेको स्फुरित होवे८४

ग्रन्थकृत्स्वगोत्रोत्कीर्तनस्वपूर्वजनाम-

कथनपूर्वकं सम्बन्धमाह ।

वंशे वत्समुनीश्वरस्य शिवदासाख्यादुरुख्यातितः सम्राडंघ्रिचिदापि यस्य जनकः श्रीसूर्यदासोऽजनि । यन्मातुर्यशसा दिशो दश विशालाक्ष्यो वलक्षीव्यधात्स प्राज्यस्वरशास्त्रसारविचितिं रामो व्यसन्नेमिषे ॥ ८५ ॥

इति श्रीरामचन्द्रसोमयाजिविरचितं समरसारं सम्पूर्णम् ।

वत्समुनीश्वरस्य वंशे उरुतरप्रसिद्धेः शिवदासाख्यात् यस्य